A. मुख्य नीतियाँ और संशोधन: ASMAR अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम, विरासत समितियाँ और कानून

भारत एवं उत्तराखंड में सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत का संरक्षण

1. प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत में प्राचीन स्मारक, पुरातात्त्विक स्थल, ऐतिहासिक भवन, मंदिर, किले, अभिलेख, पांडुलिपियाँ, वन, जैवविविधता और पारंपरिक सांस्कृतिक परंपराएँ शामिल हैं। ये विरासतें देश के इतिहास, कला, स्थापत्य, धार्मिक विश्वासों, सामाजिक जीवन और पर्यावरणीय ज्ञान की महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनके संरक्षण के लिए कानूनी प्रावधानों, सरकारी नीतियों, प्रशासनिक संस्थाओं और स्थानीय समुदायों की सहभागिता की आवश्यकता होती है।

भारत में विरासत संरक्षण का कानूनी ढाँचा विभिन्न अधिनियमों और संस्थाओं पर आधारित है। इनमें **प्राचीन स्मारक तथा पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (AMASR Act), वन (संरक्षण एवं संवर्धन) अधिनियम, 1980, भारतीय वन अधिनियम, 1927, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 तथा राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण और विरासत संरक्षण से संबंधित समितियाँ** विशेष महत्त्व रखती हैं।

यहाँ प्रश्न में उल्लिखित **ASMAR** से आशय संभवतः *Ancient Monuments and Archaeological Sites and Remains* अर्थात् प्राचीन स्मारक तथा पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम से है, जिसे सामान्यतः AMASR Act कहा जाता है। इस अधिनियम तथा अन्य संरक्षण कानूनों का अध्ययन भारत और उत्तराखंड की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत के संरक्षण की नीतियों को समझने में सहायक है।

2. प्राचीन स्मारक तथा पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (AMASR Act)

2.1 अधिनियम का परिचय

प्राचीन स्मारक तथा पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 भारत में राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन स्मारकों, पुरातात्त्विक स्थलों और अवशेषों के संरक्षण का प्रमुख केंद्रीय कानून है। इसे अंग्रेजी में *Ancient Monuments and Archaeological Sites and Remains Act, 1958* कहा जाता है। यह अधिनियम 15 अक्टूबर 1959 से लागू हुआ।

इस अधिनियम का उद्देश्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व की संरचनाओं, स्थलों, मूर्तियों, अभिलेखों तथा अन्य अवशेषों का संरक्षण करना है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित स्मारकों के रखरखाव, पुरातात्त्विक उत्खनन और संरक्षित स्थलों के आसपास निर्माण गतिविधियों को नियंत्रित करने के प्रावधान हैं।

2.2 अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य

1. राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन स्मारकों का संरक्षण एवं रखरखाव।
2. पुरातात्त्विक स्थलों और ऐतिहासिक अवशेषों की सुरक्षा।
3. पुरातात्त्विक उत्खनन को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करना।

4. मूर्तियों, नक्काशी, अभिलेखों और अन्य पुरावशेषों का संरक्षण।

5. संरक्षित स्मारकों के आसपास अनियंत्रित निर्माण गतिविधियों को रोकना।

6. स्मारकों के ऐतिहासिक स्वरूप और स्थापत्य विशेषताओं को सुरक्षित रखना।

2.3 प्राचीन स्मारक की परिभाषा

अधिनियम के अंतर्गत प्राचीन स्मारक की परिभाषा में ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक अथवा कलात्मक महत्त्व वाली संरचनाएँ, स्मारक, गुफाएँ, शैल-मूर्तियाँ, अभिलेख और एकाश्म संरचनाएँ आदि शामिल हैं। सामान्य परिभाषा में कम-से-कम 100 वर्ष से अस्तित्व में रही संरचनाओं का उल्लेख है। हालाँकि, केवल 100 वर्ष पुराना होना किसी स्थल को स्वतः *राष्ट्रीय महत्व का संरक्षित स्मारक* नहीं बना देता; उसके संरक्षण की कानूनी स्थिति संबंधित प्रावधानों और अधिसूचना पर निर्भर करती है।

2.4 वर्ष 2010 का संशोधन

वर्ष 2010 में इस अधिनियम में संशोधन एवं सत्यापन संबंधी कानून पारित किया गया। इस संशोधन से संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण गतिविधियों के नियमन तथा राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण की व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण रूप मिला।

इसके प्रमुख प्रावधानों में शामिल हैं—

1. निषिद्ध क्षेत्र (Prohibited Area): संरक्षित स्मारक के आसपास निर्धारित क्षेत्र में सामान्यतः नए निर्माण पर प्रतिबंध लागू होता है, हालांकि कानून में कुछ विशिष्ट अपवाद और प्रक्रियाएँ हैं।

2. विनियमित क्षेत्र (Regulated Area): इस क्षेत्र में निर्माण, पुनर्निर्माण, मरम्मत या नवीनीकरण के लिए लागू नियमों के अनुसार अनुमति आवश्यक हो सकती है।

3. राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण: *National Monuments Authority (NMA)* को संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण संबंधी मामलों, अनुमतियों और विरासत उपविधियों से जुड़े कार्य सौंपे गए हैं।

4. विरासत उपविधियाँ (Heritage Bye-laws): संरक्षित स्मारकों के ऐतिहासिक स्वरूप और आसपास के क्षेत्र के संरक्षण के लिए विशेष नियम तैयार करने का प्रावधान किया गया।

सामान्यतः संरक्षित स्मारकों के चारों ओर 100 मीटर का निषिद्ध क्षेत्र तथा उसके आगे 200 मीटर का विनियमित क्षेत्र निर्धारित किया गया है। इन क्षेत्रों में गतिविधियों के लिए लागू कानूनी प्रावधानों का पालन करना आवश्यक है।

2.5 राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण का महत्त्व

राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत कार्य करता है। इसकी भूमिका संरक्षित स्मारकों के आसपास विकास गतिविधियों और विरासत संरक्षण के बीच संतुलन बनाने में महत्त्वपूर्ण है। यह विरासत

उपविधियों और सक्षम प्राधिकारियों से संबंधित व्यवस्थाओं के माध्यम से संरक्षण प्रक्रिया को व्यवस्थित करता है।

2.6 उत्तराखंड में अधिनियम की उपयोगिता

उत्तराखंड में अनेक मंदिर, प्राचीन स्थापत्य अवशेष, अभिलेख, पुरातात्त्विक स्थल और ऐतिहासिक संरचनाएँ हैं। जिन स्मारकों को राष्ट्रीय महत्त्व के संरक्षित स्मारक के रूप में अधिसूचित किया गया है, उन पर संबंधित केंद्रीय कानून लागू होता है।

उदाहरण के लिए, जागेश्वर मंदिर समूह, कटारमल सूर्य मंदिर तथा बैजनाथ मंदिर समूह जैसी ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण में पुरातात्त्विक अध्ययन और संरचनात्मक सुरक्षा महत्त्वपूर्ण हैं। किसी विशिष्ट स्मारक पर लागू नियमों की पुष्टि उसकी वर्तमान कानूनी स्थिति और संबंधित सरकारी अभिलेखों से की जानी चाहिए।

3. वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और वर्ष 2023 का संशोधन

3.1 अधिनियम का परिचय

वन संरक्षण अधिनियम, 1980 का मूल उद्देश्य वन भूमि को गैर-वन उपयोग में बदलने पर नियंत्रण रखना और वन संसाधनों के संरक्षण को बढ़ावा देना था। वर्ष 2023 के संशोधन के बाद इसका वर्तमान नाम **वन (संरक्षण एवं संवर्धन) अधिनियम, 1980 — Van (Sanrakshan Evam Samvardhan) Adhiniyam, 1980** है। संशोधित नाम और प्रावधान 1 दिसंबर 2023 से प्रभावी हुए।

यह कानून विशेष रूप से उन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण है, जहाँ वन भूमि को सड़क, बाँध, खनन, औद्योगिक परियोजना अथवा अन्य गैर-वन गतिविधियों के लिए उपयोग करने का प्रस्ताव हो।

3.2 अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य

1. वन भूमि के अनियंत्रित हस्तांतरण और उपयोग पर नियंत्रण।
2. वन भूमि को गैर-वन प्रयोजनों में बदलने के लिए निर्धारित केंद्रीय स्वीकृति प्रक्रिया लागू करना।
3. वन संसाधनों और पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा करना।
4. विकास परियोजनाओं के दौरान वन भूमि के उपयोग को विनियमित करना।
5. वन संरक्षण, पुनर्स्थापन और प्रतिपूरक वनीकरण से संबंधित व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करना।

3.3 वर्ष 1988 का संशोधन

वर्ष 1988 में किए गए संशोधन ने वन भूमि के गैर-वन उपयोग पर नियंत्रण और केंद्रीय स्वीकृति संबंधी व्यवस्था को अधिक स्पष्ट एवं प्रभावी बनाया। सामान्यतः वन भूमि को गैर-वन प्रयोजन में उपयोग करने के लिए केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है, जैसा कि अधिनियम में निर्धारित है।

3.4 वर्ष 2023 का संशोधन

वर्ष 2023 में वन संरक्षण कानून में महत्त्वपूर्ण संशोधन किया गया। इसके प्रमुख पक्ष निम्नलिखित हैं—

1. अधिनियम का नाम परिवर्तन: इसका नाम *Forest (Conservation) Act, 1980* से बदलकर *Van (Sanrakshan Evam Samvardhan) Adhiniyam, 1980* किया गया।

2. लागू होने वाली भूमि का निर्धारण: संशोधित कानून की धारा 1A में उन भूमियों से संबंधित प्रावधान शामिल किए गए हैं, जिन पर अधिनियम लागू होता है। इनमें संबंधित वन कानूनों के अंतर्गत अधिसूचित भूमि और निर्धारित सरकारी अभिलेखों में वन के रूप में दर्ज कुछ भूमि शामिल हैं। इस व्यवस्था में निर्दिष्ट अपवाद और शर्तें भी हैं।

3. वन संरक्षण एवं संवर्धन पर बल: संशोधित कानून में वन संरक्षण के साथ वन संवर्धन, पारिस्थितिक सुरक्षा और सतत विकास को भी महत्त्व दिया गया है।

4. कुछ विशेष गतिविधियों के लिए प्रावधान: कानून में निर्धारित शर्तों के अधीन कुछ रणनीतिक, सुरक्षा संबंधी तथा अन्य निर्दिष्ट गतिविधियों के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए गए हैं। इनके दायरे और लागू होने की शर्तें संबंधित धाराओं के अनुसार निर्धारित होती हैं।

5. प्रतिपूरक वनीकरण: वन भूमि के स्वीकृत गैर-वन उपयोग से संबंधित मामलों में लागू नियमों के अनुसार प्रतिपूरक वनीकरण तथा अन्य पर्यावरणीय शर्तें महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं।

3.5 उत्तराखंड में वन संरक्षण का महत्त्व

उत्तराखंड हिमालयी राज्य है, जहाँ वन जलस्रोतों, जैवविविधता, मिट्टी के संरक्षण, स्थानीय आजीविका और प्राकृतिक आपदाओं के जोखिम को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र हैं। इसलिए वन संरक्षण कानून का प्रभाव राज्य की पर्यावरणीय सुरक्षा और स्थानीय समाज पर विशेष रूप से पड़ता है।

वन संरक्षण का संबंध केवल पेड़ों की रक्षा से नहीं है। यह नदियों के जलग्रहण क्षेत्र, वन्यजीवों के आवास, स्थानीय समुदायों की वन-आधारित आजीविका और पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान से भी जुड़ा है।

हालाँकि, वन संरक्षण कानून और सांस्कृतिक विरासत संरक्षण कानूनों के उद्देश्य अलग-अलग हैं। वन कानून मुख्यतः वन भूमि और उससे संबंधित गतिविधियों को नियंत्रित करता है, जबकि स्मारक संरक्षण कानून ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्थलों की रक्षा पर केंद्रित है।

4. विरासत संरक्षण से संबंधित अन्य प्रमुख कानून

सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत का संरक्षण किसी एक अधिनियम से संभव नहीं है। इसके लिए अलग-अलग कानून बनाए गए हैं, जिनका संबंध ऐतिहासिक स्मारकों, पुरावशेषों, पर्यावरण, वनों, वन्यजीवों और जैवविविधता से है।

4.1 पुरावशेष तथा बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972

पुरावशेष तथा बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972 (*Antiquities and Art Treasures Act, 1972*) का उद्देश्य प्राचीन वस्तुओं और बहुमूल्य कलाकृतियों के व्यापार, निर्यात तथा तस्करी को नियंत्रित करना है। यह कानून ऐतिहासिक और कलात्मक महत्त्व की वस्तुओं के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसके प्रमुख प्रावधान हैं—

1. पुरावशेषों के अवैध निर्यात पर नियंत्रण।
2. पुरावशेषों की तस्करी और धोखाधड़ीपूर्ण व्यापार की रोकथाम।
3. निर्धारित परिस्थितियों में पुरावशेषों के पंजीकरण की व्यवस्था।
4. पुरावशेषों के व्यापार के लिए लाइसेंस संबंधी प्रावधान।
5. महत्त्वपूर्ण कलाकृतियों को सार्वजनिक संरक्षण के लिए प्राप्त करने की निर्धारित कानूनी व्यवस्था।

उत्तराखंड के प्राचीन मंदिरों से संबंधित मूर्तियों, ऐतिहासिक कलाकृतियों और अन्य पुरावशेषों की सुरक्षा के संदर्भ में यह अधिनियम उपयोगी है।

4.2 भारतीय वन अधिनियम, 1927

भारतीय वन अधिनियम, 1927 का संबंध वनों, वन उपज के परिवहन तथा वन संसाधनों के नियमन से है। यह वन क्षेत्रों के कानूनी वर्गीकरण और वन उपज से संबंधित प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इसके प्रमुख उद्देश्य हैं—

- वनों और वन उपज से संबंधित कानूनों को व्यवस्थित करना।
- वन उपज के परिवहन को नियंत्रित करना।
- वन संसाधनों के उपयोग से संबंधित नियमों को लागू करना।
- वन प्रशासन को कानूनी आधार प्रदान करना।

उत्तराखंड में वन, जलस्रोत, स्थानीय आजीविका और पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान के बीच गहरा संबंध है। इसलिए इस कानून का अध्ययन प्राकृतिक विरासत और वन संसाधनों के संरक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है।

4.3 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार के लिए बनाया गया एक महत्त्वपूर्ण केंद्रीय कानून है। इसके अंतर्गत केंद्र सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता सुधारने तथा पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए विभिन्न उपाय करने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

इसका महत्त्व निम्नलिखित क्षेत्रों में है—

1. पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम।
2. पर्यावरणीय मानकों का निर्धारण।
3. पर्यावरण-संवेदनशील क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए नियामक उपाय।
4. औद्योगिक एवं विकास गतिविधियों से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभावों का नियमन।
5. प्राकृतिक विरासत और पारिस्थितिक तंत्रों की सुरक्षा में सहायता।

उत्तराखंड में नदियों, हिमालयी पारिस्थितिकी, वन क्षेत्रों और प्राकृतिक पर्यटन स्थलों की सुरक्षा के लिए यह कानून विशेष महत्त्व रखता है।

4.4 वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 का उद्देश्य वन्य पशुओं, पक्षियों और पौधों की सुरक्षा तथा उनसे संबंधित पारिस्थितिक सुरक्षा को बढ़ावा देना है।

उत्तराखंड में राष्ट्रीय उद्यानों, वन्यजीव अभयारण्यों और जैवविविधता से समृद्ध क्षेत्रों के संरक्षण में इस कानून की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह प्राकृतिक विरासत के संरक्षण के साथ-साथ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायता करता है।

4.5 जैव विविधता अधिनियम, 2002

जैव विविधता अधिनियम, 2002 का उद्देश्य जैवविविधता का संरक्षण, जैविक संसाधनों का सतत उपयोग तथा उनसे प्राप्त लाभों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करना है। इसमें जैविक संसाधनों और उनसे संबंधित पारंपरिक ज्ञान का महत्त्व भी स्वीकार किया गया है।

उत्तराखंड में स्थानीय औषधीय पौधों, पारंपरिक कृषि ज्ञान, वनस्पतियों तथा जैविक संसाधनों से संबंधित समुदाय-आधारित ज्ञान के संरक्षण में यह अधिनियम उपयोगी है।

5. विरासत संरक्षण समितियाँ एवं संस्थाएँ

विरासत संरक्षण के लिए केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है। इन कानूनों को लागू करने, संरक्षण योजनाएँ तैयार करने, ऐतिहासिक स्थलों का सर्वेक्षण करने और स्थानीय समुदायों को सहभागी बनाने के लिए विभिन्न संस्थाएँ एवं समितियाँ कार्य करती हैं।

5.1 भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (ASI)

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (*Archaeological Survey of India—ASI*) भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत कार्य करता है। इसका प्रमुख कार्य राष्ट्रीय महत्त्व के संरक्षित स्मारकों, पुरातात्त्विक स्थलों और ऐतिहासिक अवशेषों का संरक्षण एवं रखरखाव है।

इसके प्रमुख कार्य हैं—

- प्राचीन स्मारकों का सर्वेक्षण और दस्तावेजीकरण।
- संरक्षित स्मारकों की मरम्मत एवं संरक्षण।
- पुरातात्त्विक उत्खनन और अनुसंधान।
- ऐतिहासिक अभिलेखों, मूर्तियों और स्थापत्य अवशेषों के अध्ययन में सहयोग।
- संरक्षित स्मारकों के आसपास लागू कानूनी प्रावधानों का पालन सुनिश्चित करने में संबंधित संस्थाओं की सहायता।

5.2 राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण (NMA)

राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण (*National Monuments Authority*) का गठन AMASR अधिनियम में किए गए प्रावधानों के अंतर्गत किया गया। यह विशेष रूप से संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण गतिविधियों के नियमन और विरासत उपविधियों से संबंधित कार्य करता है।

इसके प्रमुख कार्य हैं—

1. संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण संबंधी प्रस्तावों पर निर्धारित प्रक्रिया के अंतर्गत विचार करना।
2. विरासत उपविधियों के निर्माण से संबंधित कार्यों में भूमिका निभाना।
3. स्मारक संरक्षण और विकास गतिविधियों के बीच संतुलन बनाने में सहायता करना।
4. सक्षम प्राधिकारियों से संबंधित व्यवस्थाओं में निर्धारित भूमिका निभाना।

5.3 राज्य पुरातत्त्व विभाग

राज्यों के पुरातत्त्व विभाग राज्य के स्तर पर ऐतिहासिक स्मारकों, पुरातात्त्विक स्थलों और सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण में भूमिका निभाते हैं। राज्य के कानूनों, अधिसूचनाओं और प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अनुसार उनकी जिम्मेदारियाँ निर्धारित होती हैं।

उत्तराखंड में राज्य पुरातत्त्व से संबंधित विभागीय व्यवस्थाओं के माध्यम से स्थानीय ऐतिहासिक स्थलों, पुरातात्त्विक अवशेषों और क्षेत्रीय इतिहास से जुड़े संसाधनों का अध्ययन एवं संरक्षण किया जा सकता है।

इन संस्थाओं की भूमिका केंद्रीय संरक्षित स्मारकों के संरक्षण से अलग हो सकती है। इसलिए किसी स्थल की कानूनी स्थिति जानने के लिए यह देखना आवश्यक है कि वह केंद्र द्वारा संरक्षित है, राज्य द्वारा संरक्षित है या किसी अन्य स्थानीय संरक्षण व्यवस्था के अंतर्गत आता है।

5.4 विरासत संरक्षण समितियाँ

विरासत संरक्षण समितियाँ विभिन्न स्तरों पर गठित की जा सकती हैं। उनका स्वरूप और कानूनी अधिकार संबंधित कानून, सरकारी आदेश या स्थानीय निकाय की व्यवस्था पर निर्भर करता है।

इन समितियों में निम्नलिखित संस्थाओं या व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व हो सकता है—

- पुरातत्त्व एवं इतिहास विशेषज्ञ।
- वास्तुकला और संरक्षण विशेषज्ञ।
- नगर निकायों के प्रतिनिधि।
- स्थानीय प्रशासन के अधिकारी।
- संग्रहालय एवं अभिलेखागार विशेषज्ञ।
- स्थानीय समुदायों और सांस्कृतिक संगठनों के प्रतिनिधि।

इनका कार्य विरासत स्थलों की पहचान, संरक्षण योजनाओं पर सुझाव, स्थानीय विकास गतिविधियों के प्रभाव का अध्ययन, जन-जागरूकता और संबंधित संस्थाओं के बीच समन्वय करना हो सकता है।

महत्वपूर्ण अंतर: प्रत्येक विरासत संरक्षण समिति को स्वतः वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं होते। किसी समिति की कानूनी स्थिति, अधिकार और कार्यक्षेत्र उसके गठन के आदेश तथा संबंधित अधिनियम के अनुसार निर्धारित होते हैं।

5.5 स्थानीय निकाय और समुदाय

नगर निकाय, ग्राम पंचायतें तथा स्थानीय समुदाय भी विरासत संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेष रूप से उत्तराखंड के ग्रामीण और पर्वतीय क्षेत्रों में मंदिरों, पारंपरिक भवनों, मेलों, लोककलाओं तथा मौखिक परंपराओं का संरक्षण स्थानीय सहभागिता के बिना कठिन है।

स्थानीय समुदायों के माध्यम से—

1. पारंपरिक भवनों और सांस्कृतिक स्थलों की पहचान की जा सकती है।
2. लोकगीतों, लोककथाओं और मौखिक इतिहास का संकलन किया जा सकता है।
3. पारंपरिक मेलों एवं धार्मिक आयोजनों के दस्तावेज तैयार किए जा सकते हैं।
4. स्थानीय स्थापत्य और शिल्प तकनीकों को संरक्षित किया जा सकता है।
5. विरासत स्थलों की स्वच्छता और देखभाल में सामुदायिक सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

6. भारतीय संविधान में विरासत संरक्षण

भारतीय संविधान भी सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत के संरक्षण को महत्व प्रदान करता है।

6.1 अनुच्छेद 49

संविधान का अनुच्छेद 49 संसद द्वारा कानून के माध्यम से राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित किए गए स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं को क्षति, विनाश, हटाए जाने अथवा अनुचित उपयोग से बचाने का दायित्व राज्य पर डालता है।

6.2 अनुच्छेद 51A(f)

अनुच्छेद 51A(f) के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्तव्य है कि वह भारत की समन्वित संस्कृति की समृद्ध विरासत का मूल्यांकन करे और उसका संरक्षण करे। यह प्रावधान नागरिकों की सांस्कृतिक जिम्मेदारी को स्पष्ट करता है।

6.3 अनुच्छेद 48A

अनुच्छेद 48A राज्य को पर्यावरण की रक्षा एवं सुधार करने तथा देश के वनों और वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए प्रयास करने का निर्देश देता है। इस प्रकार संविधान सांस्कृतिक स्मारकों के संरक्षण के साथ प्राकृतिक विरासत की रक्षा को भी महत्त्व देता है।

7. विरासत संरक्षण की प्रमुख चुनौतियाँ

भारत में विरासत संरक्षण के लिए अनेक कानून और संस्थाएँ होने के बावजूद इनके प्रभावी क्रियान्वयन में कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

7.1 अतिक्रमण और अनियोजित निर्माण

ऐतिहासिक स्मारकों और पारंपरिक भवनों के आसपास अनियोजित निर्माण से उनकी मूल संरचना, दृश्य स्वरूप और ऐतिहासिक परिवेश प्रभावित हो सकता है।

7.2 वित्तीय संसाधनों की कमी

कई ऐतिहासिक स्थलों और पारंपरिक भवनों के रखरखाव के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन तथा प्रशिक्षित संरक्षण विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं होते।

7.3 प्राकृतिक आपदाएँ

उत्तराखंड जैसे हिमालयी राज्य में भूकंप, भूस्खलन, अतिवृष्टि और बाढ़ से ऐतिहासिक संरचनाओं तथा प्राकृतिक विरासत को नुकसान पहुँच सकता है।

7.4 जन-जागरूकता का अभाव

जब स्थानीय समुदायों को किसी विरासत स्थल के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व की जानकारी नहीं होती, तो उसके संरक्षण में जनभागीदारी सीमित रह सकती है।

7.5 कानूनों के क्रियान्वयन में समन्वय की आवश्यकता

केंद्रीय संस्थाओं, राज्य विभागों, स्थानीय निकायों और समुदायों के बीच बेहतर समन्वय आवश्यक है। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में, जहाँ ऐतिहासिक स्मारक, प्राकृतिक संसाधन और जीवंत धार्मिक परंपराएँ एक-दूसरे से जुड़ी हों, एकीकृत संरक्षण योजना उपयोगी होती है।

8. संरक्षण को प्रभावी बनाने के उपाय

विरासत संरक्षण की नीतियों को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित कदम उपयोगी हो सकते हैं—

1. **डिजिटल दस्तावेजीकरण:** ऐतिहासिक स्थलों, अभिलेखों, पांडुलिपियों और पारंपरिक भवनों का डिजिटल रिकॉर्ड तैयार करना।
2. **नियमित सर्वेक्षण:** विरासत स्थलों की स्थिति का समय-समय पर आकलन करना।
3. **स्थानीय समुदायों की भागीदारी:** ग्राम पंचायतों, स्थानीय संस्थाओं, शिल्पकारों और सांस्कृतिक समूहों को संरक्षण योजनाओं में शामिल करना।
4. **शिक्षा एवं शोध:** विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्थानीय विरासत पर परियोजनाएँ और क्षेत्रीय अध्ययन प्रोत्साहित करना।
5. **प्रशिक्षित विशेषज्ञों की उपलब्धता:** संरक्षण वास्तुकला, पुरातत्त्व, अभिलेखागार और संग्रहालय प्रबंधन में प्रशिक्षित लोगों की भूमिका बढ़ाना।
6. **प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विरासत का समन्वित संरक्षण:** जहाँ ऐतिहासिक स्थल वन, नदी या अन्य प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े हों, वहाँ संबंधित कानूनों और संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना।
7. **कानूनी जानकारी का प्रसार:** स्थानीय लोगों को संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण, पुरावशेषों के हस्तांतरण और वन संसाधनों के उपयोग से संबंधित नियमों की जानकारी देना।

9. निष्कर्ष

भारत में सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत का संरक्षण विभिन्न कानूनों, सरकारी संस्थाओं और स्थानीय समुदायों की सहभागिता पर आधारित है। प्राचीन स्मारक तथा पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 ऐतिहासिक स्मारकों एवं पुरातात्त्विक स्थलों के संरक्षण का प्रमुख कानून है। इसके वर्ष 2010 के संशोधन ने संरक्षित स्मारकों के आसपास निर्माण गतिविधियों के नियमन तथा राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण की व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण बनाया।

इसी प्रकार वन (संरक्षण एवं संवर्धन) अधिनियम, 1980 वन भूमि के उपयोग को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण है। पुरावशेष तथा बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972 ऐतिहासिक वस्तुओं की सुरक्षा में योगदान देता है, जबकि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, भारतीय वन अधिनियम, 1927, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 और जैव विविधता अधिनियम, 2002 प्राकृतिक विरासत के विभिन्न पक्षों की रक्षा करते हैं।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, राष्ट्रीय स्मारक प्राधिकरण, राज्य पुरातत्त्व विभाग और स्थानीय संस्थाएँ इन कानूनों के क्रियान्वयन तथा विरासत संरक्षण में अलग-अलग भूमिकाएँ निभाती हैं। साथ ही, संविधान के अनुच्छेद 49, 51A(f) और 48A के माध्यम से स्मारकों, समन्वित संस्कृति और प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण को महत्त्व दिया गया है।

अंततः विरासत संरक्षण केवल कानूनी दायित्व नहीं, बल्कि ऐतिहासिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान और पर्यावरणीय संतुलन को भविष्य की पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँचाने की सामूहिक जिम्मेदारी है। उत्तराखंड जैसे ऐतिहासिक एवं पारिस्थितिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण राज्य में इस कार्य के लिए कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन, वैज्ञानिक संरक्षण, स्थानीय समुदायों की भागीदारी और जन-जागरूकता विशेष रूप से आवश्यक हैं।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

सांस्कृतिक विरासत दस्तावेज़ीकरण : रुंग समुदाय और कैलाश पवित्र परिदृश्य संरक्षण एवं विकास पहल (KSLCDI)

1. प्रस्तावना

हिमालय केवल भौगोलिक एवं प्राकृतिक क्षेत्र नहीं है, बल्कि यह विविध समुदायों की सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक आस्था, पारंपरिक ज्ञान, लोक-स्मृतियों और जीवन-पद्धतियों का महत्त्वपूर्ण केंद्र भी है। उत्तराखंड के सीमांत पिथौरागढ़ जनपद के धारचूला क्षेत्र में निवास करने वाला रुंग समुदाय (Rung Community) अपनी विशिष्ट भाषा, लोक-संस्कृति, पारंपरिक आजीविका, व्यापारिक इतिहास तथा कैलाश–मानसरोवर क्षेत्र से जुड़े धार्मिक-सांस्कृतिक संबंधों के लिए जाना जाता है।

रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत का दस्तावेज़ीकरण केवल अतीत की परंपराओं को सुरक्षित रखने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह समुदाय की पहचान, पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय विकास को प्रोत्साहित करने का माध्यम भी है। इसी व्यापक संदर्भ में कैलाश पवित्र परिदृश्य संरक्षण एवं विकास पहल (Kailash Sacred Landscape Conservation and Development Initiative—KSLCDI) का विशेष महत्त्व है।

2. रुंग समुदाय का परिचय एवं भौगोलिक विस्तार

रुंग समुदाय उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र के सीमांत हिमालयी भूभाग में मुख्यतः धारचूला तहसील के अंतर्गत निवास करता है। इस समुदाय का संबंध विशेष रूप से दारमा, व्यास और चौदांस घाटियों से है। ये घाटियाँ अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों, प्राकृतिक संपदा, पारंपरिक आवास, धार्मिक स्थलों और सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्ध हैं।

रुंग समुदाय की पहचान उसकी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से निर्मित हुई है। समुदाय के जीवन में निम्नलिखित विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण हैं—

1. भाषा एवं बोली: रुंग समुदाय की अपनी भाषायी परंपरा है, जो उसकी सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक स्मृति की वाहक है।
2. पारंपरिक आजीविका: ऐतिहासिक रूप से व्यापार, पशुपालन, कृषि और मौसमी प्रवास इसके आर्थिक जीवन के महत्त्वपूर्ण आधार रहे हैं।
3. सामाजिक संगठन: परिवार, रिश्तेदारी, सामुदायिक सहयोग और पारंपरिक संस्थाएँ सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करती रही हैं।
4. लोक-संस्कृति: लोकगीत, लोककथाएँ, नृत्य, उत्सव, पारंपरिक वस्त्र और खान-पान इसकी सांस्कृतिक विरासत के प्रमुख अंग हैं।
5. धार्मिक मान्यताएँ: हिमालय, पर्वत, नदियों, स्थानीय देवताओं और कैलाश क्षेत्र के प्रति धार्मिक आस्था समुदाय की सांस्कृतिक चेतना में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

3. रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत

रुंग समुदाय की विरासत को केवल स्थापत्य या पुरातात्त्विक अवशेषों तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसमें भौतिक और अमूर्त, दोनों प्रकार की विरासत सम्मिलित हैं।

(क) भाषायी विरासत

भाषा किसी समुदाय की ऐतिहासिक स्मृति, लोकज्ञान और सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख माध्यम होती है। रुंग समुदाय की भाषायी परंपरा में स्थानीय पर्यावरण, वनस्पतियों, पशुओं, कृषि, मौसम और धार्मिक मान्यताओं से संबंधित विशिष्ट शब्दावली तथा ज्ञान सुरक्षित है।

आधुनिक शिक्षा, रोजगार और पलायन के कारण स्थानीय भाषाओं के दैनिक प्रयोग में कमी आने की आशंका है। इसलिए भाषा का ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग, शब्दकोश निर्माण, लोककथाओं का संकलन और नई पीढ़ी को मातृभाषा से जोड़ना आवश्यक है।

(ख) लोकगीत, लोककथाएँ एवं मौखिक परंपराएँ

रुंग समुदाय की मौखिक परंपराओं में उसके ऐतिहासिक अनुभव, सामाजिक संबंध, व्यापारिक यात्राएँ, प्राकृतिक आपदाएँ, धार्मिक विश्वास और सामुदायिक स्मृतियाँ संरक्षित हैं। लोकगीत और कथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक ज्ञान के हस्तांतरण का कार्य करती हैं।

इनका दस्तावेज़ीकरण निम्न माध्यमों से किया जा सकता है—

- वरिष्ठ नागरिकों और लोक कलाकारों के साक्षात्कार।
- लोकगीतों एवं लोककथाओं की ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग।
- पारंपरिक उत्सवों और अनुष्ठानों का अभिलेखीकरण।
- स्थानीय भाषा में कथाओं का लिप्यंतरण एवं अनुवाद।
- डिजिटल संग्रहालय और सामुदायिक अभिलेखागार का निर्माण।

(ग) पारंपरिक व्यापार एवं आर्थिक इतिहास

रुंग समुदाय का ऐतिहासिक जीवन तिब्बत के साथ होने वाले सीमापार व्यापार से गहराई से जुड़ा रहा है। नमक, ऊन, अनाज तथा अन्य वस्तुओं का विनिमय इस व्यापार का हिस्सा था। व्यापारिक मार्गों ने केवल आर्थिक संबंध ही विकसित नहीं किए, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सामाजिक संपर्क और पारस्परिक निर्भरता को भी बढ़ावा दिया।

1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद पारंपरिक व्यापारिक व्यवस्था बाधित हुई। इसका प्रभाव समुदाय की आजीविका, मौसमी प्रवास और सामाजिक-आर्थिक संरचना पर पड़ा। अतः व्यापारिक मार्गों, पुराने पड़ावों, स्थानीय बाजारों और व्यापार से जुड़ी मौखिक स्मृतियों का दस्तावेज़ीकरण आर्थिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

(घ) पारंपरिक वास्तुकला एवं आवास

दारमा, व्यास और चौदांस घाटियों में पारंपरिक मकान स्थानीय जलवायु, उपलब्ध निर्माण सामग्री और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुए हैं। पत्थर, लकड़ी और स्थानीय निर्माण तकनीकों का प्रयोग इन आवासों को विशिष्ट बनाता है।

पारंपरिक घरों, भंडारण व्यवस्था, पशुशालाओं, पूजा स्थलों और गाँवों की बसावट का सर्वेक्षण कर उनका चित्रात्मक, मानचित्रात्मक और लिखित अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए।

(ङ) पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान

रुंग समुदाय का जीवन हिमालयी पर्यावरण के साथ गहरे रूप में जुड़ा है। स्थानीय वनस्पतियों, औषधीय पौधों, जलस्रोतों, चरागाहों, मौसमी परिवर्तनों और कृषि-पद्धतियों के संबंध में समुदाय के पास पीढ़ियों से संचित अनुभवजन्य ज्ञान है।

यह ज्ञान जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता संरक्षण और सतत विकास की वर्तमान चुनौतियों के संदर्भ में विशेष उपयोगिता रखता है।

4. कैलाश पवित्र परिदृश्य : अवधारणा एवं महत्त्व

कैलाश पवित्र परिदृश्य (Kailash Sacred Landscape—KSL) भारत, नेपाल और चीन के तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में फैला एक विशिष्ट पारिस्थितिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र है। इसका कुल विस्तार लगभग 31,000 वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्र जैव विविधता, हिमालयी पारिस्थितिकी, धार्मिक आस्था और स्थानीय समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कैलाश पर्वत और मानसरोवर झील इस परिदृश्य के प्रमुख धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीक हैं।

इस क्षेत्र का महत्त्व केवल धार्मिक पर्यटन तक सीमित नहीं है। यहाँ की नदियाँ, हिमनद, वन, उच्च हिमालयी चरागाह, वन्यजीव और स्थानीय समुदायों का पारंपरिक ज्ञान एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसलिए इस क्षेत्र का संरक्षण प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है।

5. KSLCDI का परिचय एवं उद्देश्य

KSLCDI का पूरा नाम Kailash Sacred Landscape Conservation and Development Initiative है, जिसका हिंदी अर्थ है—कैलाश पवित्र परिदृश्य संरक्षण एवं विकास पहल। यह अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर आधारित कार्यक्रम है, जिसे International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD) के नेतृत्व में भारत, नेपाल और चीन के साझेदार संस्थानों के सहयोग से विकसित किया गया।

इस पहल का व्यापक उद्देश्य कैलाश पवित्र परिदृश्य में दीर्घकालीन पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता की सुरक्षा, स्थानीय समुदायों की आजीविका में सुधार तथा सांस्कृतिक संबंधों का संरक्षण करना है। इसके अंतर्गत स्थानीय और राष्ट्रीय संस्थाओं, शोधकर्ताओं तथा समुदायों की सहभागिता को महत्त्व दिया गया है।

KSLCDI के प्रमुख उद्देश्य

1. जैव विविधता का संरक्षण: हिमालयी वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, प्राकृतिक आवासों और पारिस्थितिक तंत्र की सुरक्षा।
2. सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण: स्थानीय समुदायों की भाषा, लोकगीत, लोककथाएँ, पारंपरिक ज्ञान और धार्मिक-सांस्कृतिक संबंधों का दस्तावेज़ीकरण।
3. सतत आजीविका का विकास: स्थानीय उत्पादों, पारंपरिक शिल्प, कृषि, पशुपालन और जिम्मेदार पर्यटन के माध्यम से रोजगार के अवसर विकसित करना।
4. जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन: हिमालयी पर्यावरण में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन तथा समुदायों की अनुकूलन क्षमता को मजबूत करना।
5. सीमापार सहयोग: भारत, नेपाल और चीन के बीच पर्यावरण एवं सांस्कृतिक संरक्षण के लिए सहयोग को प्रोत्साहित करना।
6. स्थानीय सहभागिता: संरक्षण और विकास की योजनाओं में स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करना।

6. KSLCDI के प्रमुख कार्यक्रमगत घटक

ICIMOD के अनुसार इस पहल के पाँच प्रमुख घटक हैं—

घटक	**प्रमुख कार्य**
नवाचारी आजीविका	स्थानीय उत्पादों, शिल्प और जिम्मेदार पर्यटन को प्रोत्साहन
पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन	वन, जल, चरागाह और जैव विविधता का संरक्षण
पहुँच एवं लाभ-साझेदारी	जैव संसाधनों से प्राप्त लाभों में स्थानीय समुदायों की भागीदारी
दीर्घकालीन संरक्षण एवं निगरानी	पर्यावरणीय और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन
क्षेत्रीय सहयोग, नीतियाँ एवं ज्ञान प्रबंधन	तीन देशों के संस्थानों और समुदायों के बीच सहयोग तथा ज्ञान का आदान-प्रदान

इन घटकों का उद्देश्य संरक्षण को स्थानीय विकास और समुदायों की आर्थिक आवश्यकताओं से जोड़ना है।

7. KSLCDI के अंतर्गत रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत का दस्तावेज़ीकरण

KSLCDI के दूसरे चरण में उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जनपद के रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत के दस्तावेज़ीकरण को विशेष महत्व दिया गया। इस कार्य में जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान (GBPNIHE), कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

संस्थान द्वारा रुंग समुदाय की सांस्कृतिक पहचान, पारंपरिक ज्ञान और जीवन-पद्धति को समझने के लिए धारचूला क्षेत्र की दारमा, व्यास और चौदांस घाटियों के समुदायों को शामिल करते हुए विभिन्न स्तरों पर हितधारक परामर्श आयोजित किए गए। इन परामर्शों में समुदाय के सदस्यों, विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं और संबंधित संस्थाओं की सहभागिता रही। प्राप्त जानकारियों के आधार पर समुदाय की सांस्कृतिक विरासत की स्थिति, चुनौतियों और संभावनाओं का SWOT विश्लेषण करने का प्रयास किया गया।

दस्तावेज़ीकरण के प्रमुख क्षेत्र

1. भाषा एवं मौखिक परंपराएँ: रुंग भाषा, लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें और सामुदायिक स्मृतियों का संकलन।

2. सामाजिक एवं पारिवारिक परंपराएँ: विवाह, पारिवारिक संबंध, सामाजिक संगठन, सामुदायिक सहयोग और पारंपरिक संस्थाओं का अध्ययन।

3. पारंपरिक आजीविका: कृषि, पशुपालन, व्यापार, स्थानीय उत्पादों और मौसमी प्रवास से जुड़े ज्ञान का अभिलेखीकरण।

4. धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ: स्थानीय देवी-देवताओं, पर्वों, अनुष्ठानों, धार्मिक स्थलों और पवित्र प्राकृतिक स्थलों का अध्ययन।

5. पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान: औषधीय वनस्पतियों, जलस्रोतों, चरागाहों, वन संसाधनों और स्थानीय जलवायु संबंधी अनुभवों का दस्तावेज़ीकरण।

6. पारंपरिक आवास एवं भौतिक संस्कृति: मकानों, निर्माण तकनीकों, वस्त्रों, आभूषणों, घरेलू उपकरणों और शिल्प परंपराओं का रिकॉर्ड तैयार करना।

इस प्रकार दस्तावेज़ीकरण का उद्देश्य केवल सांस्कृतिक सामग्री एकत्र करना नहीं, बल्कि यह समझना भी है कि रुंग समुदाय की परंपराएँ बदलते सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय परिवेश में किस प्रकार विकसित हो रही हैं।

8. दस्तावेज़ीकरण की आवश्यकता एवं चुनौतियाँ

रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत आज अनेक सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिवर्तनों से प्रभावित हो रही है। आधुनिक शिक्षा, संचार एवं परिवहन सुविधाओं के विस्तार ने समुदाय को बाहरी दुनिया से जोड़ा है, लेकिन इसके साथ पारंपरिक जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक संस्थाओं में भी परिवर्तन आया है।

प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. भाषा का क्षरण: नई पीढ़ी में स्थानीय भाषा के प्रयोग और हस्तांतरण में कमी।
2. पलायन: शिक्षा एवं रोजगार के लिए युवाओं का मैदानी क्षेत्रों और नगरों की ओर जाना।
3. मौखिक परंपराओं का लोप: लोकगीतों, लोककथाओं और पारंपरिक ज्ञान के जानकार वरिष्ठ लोगों की संख्या कम होना।

4. पारंपरिक आजीविका में परिवर्तन: पुराने व्यापारिक संबंधों और पारंपरिक आर्थिक गतिविधियों का कमजोर होना।
5. सांस्कृतिक समरूपीकरण: बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों के कारण स्थानीय विशिष्टताओं में परिवर्तन।
6. पर्यावरणीय संकट: जलवायु परिवर्तन, हिमनदों में बदलाव, प्राकृतिक आपदाएँ और जैव विविधता पर बढ़ता दबाव।
7. दस्तावेज़ीकरण की सीमाएँ: स्थानीय भाषा में प्रशिक्षित शोधकर्ताओं, संसाधनों और दीर्घकालीन अभिलेखागार की कमी।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए केवल बाहरी शोधकर्ताओं द्वारा सर्वेक्षण पर्याप्त नहीं है। समुदाय के लोगों को दस्तावेज़ीकरण की योजना, सामग्री के सत्यापन, उसके उपयोग और प्रकाशन की प्रक्रिया में भागीदार बनाना आवश्यक है।

9. सांस्कृतिक विरासत और आर्थिक विकास की संभावनाएँ

KSLCDI की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत के संरक्षण को स्थानीय आर्थिक विकास से जोड़ने का प्रयास करता है। रुंग समुदाय की परंपराओं और स्थानीय संसाधनों के आधार पर आजीविका के कई अवसर विकसित किए जा सकते हैं।

- सांस्कृतिक पर्यटन: रुंग समुदाय की जीवन-पद्धति, पारंपरिक आवास, लोकगीत, उत्सव और ऐतिहासिक व्यापारिक मार्गों पर आधारित सामुदायिक पर्यटन।
- पारंपरिक उत्पाद: स्थानीय कृषि उत्पादों, ऊनी वस्त्रों, हस्तशिल्प और अन्य पारंपरिक वस्तुओं को बाजार से जोड़ना।
- स्थानीय भोजन एवं पाक परंपरा: पारंपरिक खाद्य पदार्थों और स्थानीय व्यंजनों को सांस्कृतिक पहचान के साथ प्रोत्साहित करना।
- प्रकृति आधारित पर्यटन: जैव विविधता, उच्च हिमालयी चरागाहों, प्राकृतिक मार्गों और स्थानीय पर्यावरणीय ज्ञान पर आधारित जिम्मेदार पर्यटन।
- युवा सहभागिता: स्थानीय युवाओं को डिजिटल दस्तावेज़ीकरण, फोटोग्राफी, वीडियो रिकॉर्डिंग, पर्यटन मार्गदर्शन और सांस्कृतिक व्याख्या का प्रशिक्षण देना।

KSLCDI के दस्तावेज़ों में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के साथ साहसिक पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन और पारिस्थितिकी पर्यटन जैसी वैकल्पिक आजीविका संभावनाओं पर विचार करने की आवश्यकता भी रेखांकित की गई है।

10. संरक्षण के लिए आवश्यक सुझाव

रुंग समुदाय की विरासत के दीर्घकालीन संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी हो सकते हैं—

1. रुंग भाषा का डिजिटल शब्दकोश और ऑडियो-वीडियो अभिलेखागार विकसित किया जाए।
2. प्रत्येक गाँव में स्थानीय इतिहास, लोककथाओं और पारंपरिक ज्ञान का सामुदायिक दस्तावेज़ तैयार किया जाए।
3. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में स्थानीय संस्कृति और इतिहास से संबंधित गतिविधियाँ आयोजित हों।
4. वरिष्ठ नागरिकों, लोक कलाकारों और पारंपरिक ज्ञान के जानकारों को दस्तावेज़ीकरण में शामिल किया जाए।
5. सांस्कृतिक विरासत पर आधारित पर्यटन का संचालन स्थानीय समुदायों की सहमति और नेतृत्व में किया जाए।
6. दस्तावेज़ों के प्रकाशन से पहले समुदाय के प्रतिनिधियों से उनका सत्यापन कराया जाए।
7. पारंपरिक ज्ञान और जैव संसाधनों से उत्पन्न आर्थिक लाभों में स्थानीय समुदायों की उचित भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

विशेष रूप से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दस्तावेज़ीकरण के दौरान समुदाय की सांस्कृतिक संवेदनशीलता, बौद्धिक अधिकारों और गोपनीय परंपराओं का सम्मान किया जाए। प्रत्येक सांस्कृतिक परंपरा को सार्वजनिक करना आवश्यक नहीं है; कुछ ज्ञान केवल समुदाय के भीतर सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

11. KSLCDI का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

KSLCDI का महत्त्व इस बात में निहित है कि यह हिमालयी क्षेत्र को केवल प्राकृतिक संसाधनों के भंडार के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे एक जीवंत सांस्कृतिक परिदृश्य के रूप में समझता है। इस पहल के माध्यम से निम्नलिखित योगदान सामने आते हैं—

- रुंग समुदाय की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को अकादमिक और संस्थागत स्तर पर महत्त्व मिला।
- स्थानीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और मौखिक इतिहास के दस्तावेज़ीकरण की आवश्यकता रेखांकित हुई।
- प्राकृतिक पर्यावरण और सांस्कृतिक विरासत के परस्पर संबंधों को समझने का अवसर मिला।
- सीमापार सांस्कृतिक संबंधों और ऐतिहासिक व्यापारिक संपर्कों के अध्ययन को प्रोत्साहन मिला।
- संरक्षण और आजीविका को एक-दूसरे से जोड़ने की अवधारणा को बल मिला।

इस पहल का एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि सांस्कृतिक विरासत का अंतिम दस्तावेज़ सार्वजनिक करने से पहले रुंग कल्याण संस्था (Rung Kalyan Sanstha), देहरादून सहित समुदाय के लोगों की समीक्षा और सहभागिता को महत्त्व देने की बात कही गई। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक दस्तावेज़ीकरण में समुदाय की सहमति और प्रतिनिधित्व आवश्यक हैं।

12. निष्कर्ष

रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत उत्तराखंड के सीमांत हिमालय की समृद्ध ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है। दारमा, व्यास और चौदांस घाटियों में विकसित इसकी भाषा, लोकगीत, पारंपरिक व्यापार, धार्मिक मान्यताएँ, पर्यावरणीय ज्ञान और सामाजिक संस्थाएँ हिमालयी जीवन के अनूठे स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं।

कैलाश पवित्र परिदृश्य संरक्षण एवं विकास पहल (KSLCDI) ने इस विरासत के संरक्षण को प्राकृतिक पर्यावरण, सामुदायिक सहभागिता और सतत आजीविका के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। विशेष रूप से KSLCDI के दूसरे चरण में जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान द्वारा रुंग समुदाय की सांस्कृतिक विरासत के दस्तावेज़ीकरण की पहल इस दिशा में उल्लेखनीय है।

अतः कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक विरासत का वास्तविक संरक्षण तभी संभव है, जब समुदाय स्वयं अपनी विरासत का संरक्षक, व्याख्याकार और विकास प्रक्रिया का सक्रिय भागीदार बने। रुंग समुदाय का उदाहरण हिमालयी विरासत संरक्षण के लिए समुदाय-केंद्रित दृष्टिकोण की उपयोगिता को स्पष्ट करता है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली का शैक्षिक एवं सांस्कृतिक भ्रमण : भारतीय इतिहास, कला और विरासत का सजीव अनुभव

1. प्रस्तावना

संग्रहालय किसी भी राष्ट्र की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, कलात्मक और बौद्धिक विरासत के संरक्षण एवं प्रदर्शन के महत्त्वपूर्ण केंद्र होते हैं। ये केवल प्राचीन वस्तुओं को सुरक्षित रखने वाले संस्थान नहीं हैं, बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच संवाद स्थापित करने वाले ज्ञान-केंद्र भी हैं। किसी देश का इतिहास केवल पुस्तकों, अभिलेखों और ऐतिहासिक विवरणों में ही नहीं मिलता, बल्कि उसकी मूर्तियों, चित्रों, सिक्कों, पांडुलिपियों, अस्त्र-शस्त्रों, आभूषणों, वस्त्रों, पुरातात्त्विक अवशेषों तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं में भी संरक्षित रहता है। संग्रहालय इन सभी ऐतिहासिक साक्ष्यों को एक स्थान पर व्यवस्थित करके समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

भारत जैसे प्राचीन और बहुसांस्कृतिक देश में संग्रहालयों का महत्त्व और भी अधिक है। भारतीय सभ्यता का विकास हजारों वर्षों की ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक परंपरा, महाजनपदों का उदय, मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य, मध्यकालीन राजवंश, क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, धार्मिक परंपराएँ, कला एवं स्थापत्य तथा आधुनिक भारत का इतिहास अनेक प्रकार के भौतिक साक्ष्यों में सुरक्षित है। इन साक्ष्यों को देखने और समझने का सबसे प्रभावशाली माध्यम संग्रहालय हैं।

इसी दृष्टि से **राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली (National Museum, New Delhi)** का भ्रमण विद्यार्थियों, शोधार्थियों, इतिहासकारों तथा सामान्य नागरिकों के लिए विशेष शैक्षिक महत्त्व रखता है। राष्ट्रीय संग्रहालय भारत की प्राचीन सभ्यता, ऐतिहासिक विकास, धार्मिक विविधता, कला-कौशल और सांस्कृतिक निरंतरता का एक समृद्ध परिचय प्रस्तुत करता है। यहाँ संरक्षित पुरावशेषों के माध्यम से भारतीय इतिहास को केवल पढ़ा ही नहीं जाता, बल्कि उसे प्रत्यक्ष रूप से देखा, समझा और अनुभव किया जा सकता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय का शैक्षिक भ्रमण इतिहास के विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है, क्योंकि इससे उन्हें पाठ्यपुस्तकों में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों और वास्तविक पुरातात्त्विक साक्ष्यों के बीच संबंध स्थापित करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार संग्रहालय भ्रमण एक सामान्य पर्यटन गतिविधि न होकर इतिहास के व्यावहारिक अध्ययन, सांस्कृतिक चेतना और विरासत संरक्षण की समझ विकसित करने का माध्यम बन जाता है।

2. राष्ट्रीय संग्रहालय का ऐतिहासिक परिचय

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली भारत के प्रमुख संग्रहालयों में से एक है। इसकी स्थापना स्वतंत्रता के बाद भारतीय कला एवं सांस्कृतिक विरासत को एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में संरक्षित और प्रदर्शित करने के उद्देश्य से की गई थी।

वर्ष 1947-48 में लंदन स्थित रॉयल एकेडमी में भारतीय कला की एक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनी आयोजित की गई थी। इस प्रदर्शनी में भारतीय कला और पुरावशेषों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शनी की

समाप्ति के बाद वहाँ प्रदर्शित भारतीय कलाकृतियों को भारत लाया गया। इन कलाकृतियों को आम जनता के लिए प्रदर्शित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना की दिशा में प्रयास किए गए।

राष्ट्रीय संग्रहालय का उद्घाटन 15 अगस्त 1949 को राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली में हुआ था। बाद में इसके स्थायी भवन का निर्माण जनपथ, नई दिल्ली में किया गया। 18 दिसंबर 1960 को संग्रहालय को वर्तमान भवन में स्थानांतरित किया गया। प्रारंभ में यह शिक्षा मंत्रालय के अधीन था और वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत कार्य करता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना का मूल उद्देश्य भारत की ऐतिहासिक, कलात्मक और सांस्कृतिक विरासत को एकत्रित करना, उसका वैज्ञानिक संरक्षण करना, शोध को प्रोत्साहित करना और उसे आम जनता के लिए सुलभ बनाना है।

इस संग्रहालय में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक की अनेक महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ और पुरावशेष संरक्षित हैं। इनमें सिंधु घाटी सभ्यता की वस्तुएँ, मौर्य एवं गुप्तकालीन मूर्तियाँ, बौद्ध और जैन कला, मध्यकालीन चित्रकला, कांस्य प्रतिमाएँ, सिक्के, पांडुलिपियाँ, आभूषण, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र तथा विभिन्न क्षेत्रों की लोक एवं जनजातीय कलाकृतियाँ शामिल हैं।

इस प्रकार राष्ट्रीय संग्रहालय भारतीय इतिहास के विविध पक्षों का एक समेकित परिचय प्रस्तुत करता है।

3. संग्रहालय भ्रमण का उद्देश्य

राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण केवल ऐतिहासिक वस्तुओं को देखने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण, विश्लेषणात्मक क्षमता और सांस्कृतिक चेतना विकसित करना भी होना चाहिए।

इस प्रकार के शैक्षिक भ्रमण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

3.1 ऐतिहासिक ज्ञान का व्यावहारिक विकास

पुस्तकों में विद्यार्थी सिंधु सभ्यता, मौर्यकालीन कला, गुप्तकालीन मूर्तिकला और मध्यकालीन चित्रकला के विषय में पढ़ते हैं। संग्रहालय में इनसे संबंधित वास्तविक पुरावशेषों को देखने से उनका ज्ञान अधिक स्पष्ट और स्थायी होता है।

3.2 पुरातात्त्विक साक्ष्यों की समझ

इतिहास के अध्ययन में पुरातात्त्विक साक्ष्यों का विशेष महत्त्व है। मूर्तियाँ, सिक्के, मृद्भांड, मुहरें, औजार, आभूषण और स्थापत्य अवशेष अतीत के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन की जानकारी प्रदान करते हैं। संग्रहालय भ्रमण विद्यार्थियों को इन साक्ष्यों की पहचान और उपयोग समझने में सहायता करता है।

3.3 भारतीय कला एवं संस्कृति का परिचय

भारत की कला परंपरा अत्यंत समृद्ध है। विभिन्न कालखंडों में विकसित मूर्तिकला, चित्रकला, धातुकला, वस्त्रकला और हस्तशिल्प की विविध शैलियों का प्रत्यक्ष अध्ययन विद्यार्थियों को भारतीय सांस्कृतिक विविधता से परिचित कराता है।

3.4 विरासत संरक्षण के प्रति जागरूकता

ऐतिहासिक धरोहरें मानव सभ्यता की अमूल्य संपत्ति हैं। संग्रहालय में संरक्षित वस्तुओं को देखकर यह समझ विकसित होती है कि पुरावशेषों का संरक्षण क्यों आवश्यक है और उन्हें नष्ट होने से बचाने के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग किस प्रकार किया जाता है।

3.5 शोध एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का विकास

संग्रहालय में प्रदर्शित प्रत्येक वस्तु अपने समय, समाज और संस्कृति की कहानी कहती है। विद्यार्थी वस्तुओं के निर्माण, उपयोग, सामग्री, शैली और ऐतिहासिक संदर्भ का विश्लेषण करना सीखते हैं। इससे उनमें शोधपरक दृष्टिकोण विकसित होता है।

4. राष्ट्रीय संग्रहालय की प्रमुख दीर्घाएँ एवं उनका ऐतिहासिक महत्त्व

राष्ट्रीय संग्रहालय में विभिन्न कालखंडों और विषयों पर आधारित अनेक दीर्घाएँ हैं। इन दीर्घाओं के माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास को समझने का अवसर मिलता है।

4.1 सिंधु घाटी सभ्यता दीर्घा

राष्ट्रीय संग्रहालय की सबसे महत्त्वपूर्ण दीर्घाओं में सिंधु घाटी सभ्यता से संबंधित पुरावशेषों की दीर्घा प्रमुख है। सिंधु सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में से एक थी। इसका विकास लगभग तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में हुआ था।

इस सभ्यता के प्रमुख पुरातात्त्विक स्थल हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, धोलावीरा, कालीबंगा, लोथल और राखीगढ़ी हैं। इस सभ्यता के नगर नियोजन, जल निकासी व्यवस्था, व्यापार, शिल्पकला और सामाजिक जीवन की जानकारी पुरातात्त्विक अवशेषों से प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में इस सभ्यता से संबंधित अनेक वस्तुएँ प्रदर्शित हैं, जिनमें प्रमुख हैं—

- कांस्य की प्रसिद्ध नर्तकी की प्रतिकृति अथवा संबंधित प्रदर्शित सामग्री।
- टेराकोटा की मूर्तियाँ।
- पशु आकृतियों वाली मुहरें।
- मृद्भांड एवं पात्र।
- मनके और आभूषण।
- पत्थर एवं धातु के उपकरण।

- खिलौने तथा दैनिक उपयोग की वस्तुएँ।

सिंधु सभ्यता की मुहरें विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन पर पशुओं की आकृतियाँ और अपठित लिपि के चिह्न दिखाई देते हैं। मुहरों से व्यापारिक गतिविधियों, धार्मिक प्रतीकों और प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है।

इस सभ्यता की सबसे चर्चित कलाकृतियों में मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य नर्तकी की प्रतिमा का उल्लेख किया जाता है। यह प्रतिमा धातु ढलाई की उन्नत तकनीक और तत्कालीन कलात्मक कौशल का परिचय देती है। राष्ट्रीय संग्रहालय में इस प्रसिद्ध प्रतिमा की प्रतिकृति प्रदर्शित है; मूल प्रतिमा पाकिस्तान के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है।

सिंधु सभ्यता की वस्तुओं का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन काल से ही विकसित नगरीय जीवन, शिल्प उत्पादन और व्यापारिक गतिविधियाँ विद्यमान थीं।

4.2 मौर्यकालीन कला एवं मूर्तिकला

मौर्य साम्राज्य भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चरण था। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित साम्राज्य का विस्तार सम्राट अशोक के शासनकाल में हुआ। मौर्यकालीन कला में राजकीय संरक्षण, धार्मिक विचारधारा और स्थापत्य कौशल का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में मौर्यकालीन कला से संबंधित सामग्री भारतीय कला के विकास को समझने में सहायता करती है। इस काल की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. चमकदार पालिश वाले पत्थर के स्तंभ।
2. सिंह, बैल और हाथी की आकृतियों वाले शीर्ष।
3. यक्ष एवं यक्षिणी की विशाल प्रतिमाएँ।
4. बौद्ध धर्म से संबंधित कलात्मक प्रतीक।
5. शिलालेख एवं अभिलेखीय परंपरा।

मौर्यकालीन मूर्तिकला में पत्थर पर उत्कृष्ट पालिश और शिल्पकौशल दिखाई देता है। सम्राट अशोक के स्तंभों पर उत्कीर्ण सिंह, बैल और अन्य पशु आकृतियाँ तत्कालीन कला एवं राजकीय प्रतीकवाद को प्रदर्शित करती हैं।

सारनाथ का सिंह स्तंभशीर्ष भारतीय गणराज्य का राष्ट्रीय प्रतीक है। यह भारतीय इतिहास में मौर्यकालीन कला के स्थायी प्रभाव का उदाहरण है।

मौर्यकालीन कला के अध्ययन से यह समझने में सहायता मिलती है कि प्राचीन भारत में कला का उपयोग केवल सौंदर्य अभिव्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि राजनीतिक विचारधारा और धार्मिक संदेशों के प्रसार के लिए भी किया जाता था।

4.3 बौद्ध कला एवं पुरावशेष

बौद्ध धर्म का भारतीय कला एवं संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार के साथ स्तूप, विहार, चैत्य, मूर्तिकला और चित्रकला की समृद्ध परंपरा विकसित हुई।

राष्ट्रीय संग्रहालय में बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण कलाकृतियाँ प्रदर्शित हैं। इनमें बुद्ध की प्रतिमाएँ, बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ, स्तूप संबंधी कलात्मक सामग्री तथा बौद्ध धर्म से संबंधित पुरावशेष शामिल हैं।

बौद्ध कला के विकास को समझने के लिए गांधार और मथुरा कला शैलियाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

गांधार कला शैली पर यूनानी-रोमन कला का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें बुद्ध की प्रतिमाओं में घुंघराले बाल, वस्त्रों की सलवटें और यथार्थवादी शारीरिक संरचना दिखाई देती है।

इसके विपरीत **मथुरा कला शैली** में भारतीय परंपरा का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। इसमें बुद्ध की प्रतिमाओं में आध्यात्मिकता, शारीरिक ऊर्जा और भारतीय सौंदर्यबोध का समन्वय दिखाई देता है।

बौद्ध कला का अध्ययन यह बताता है कि भारतीय कला ने विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी विशिष्ट पहचान विकसित की।

4.4 गुप्तकालीन कला एवं मूर्तिकला

गुप्तकाल को भारतीय इतिहास में कला, साहित्य, विज्ञान और संस्कृति के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस काल में मूर्तिकला ने एक आदर्श एवं संतुलित स्वरूप प्राप्त किया।

गुप्तकालीन मूर्तियों में शारीरिक सौंदर्य, आध्यात्मिक शांति, भावाभिव्यक्ति और अनुपात की उत्कृष्टता दिखाई देती है। बुद्ध की सारनाथ शैली की प्रतिमाएँ इस कला की प्रमुख विशेषताओं को प्रदर्शित करती हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

- चेहरे पर शांति और आध्यात्मिक भाव।
- शरीर की संतुलित एवं सुगठित संरचना।
- वस्त्रों का सूक्ष्म अंकन।
- अलंकरण में संयम।
- धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति।

राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित गुप्तकालीन मूर्तियाँ विद्यार्थियों को यह समझने का अवसर देती हैं कि भारतीय कला में आध्यात्मिकता और सौंदर्य का कितना गहरा संबंध रहा है।

4.5 मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला

मध्यकाल में भारतीय मूर्तिकला ने विभिन्न क्षेत्रीय शैलियों में विकास किया। इस काल में मंदिर निर्माण, धार्मिक प्रतिमाओं, धातु मूर्तियों और स्थापत्य अलंकरण की परंपरा अधिक विकसित हुई।

मध्यकालीन मूर्तिकला में शिव, विष्णु, देवी, सूर्य, गणेश, जैन तीर्थंकरों और बौद्ध देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं।

इन प्रतिमाओं के अध्ययन से धार्मिक विश्वासों, सामाजिक संरचना, राजकीय संरक्षण और क्षेत्रीय कला परंपराओं की जानकारी प्राप्त होती है।

मध्यकालीन मूर्तियों में वस्त्र, आभूषण, मुकुट, मुद्रा, आयुध और वाहन का विशिष्ट महत्त्व होता है। इन प्रतीकों के आधार पर प्रतिमाओं की धार्मिक पहचान तथा सांस्कृतिक संदर्भ समझे जा सकते हैं।

5. भारतीय लघु चित्रकला दीर्घा

भारतीय चित्रकला की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। विभिन्न कालखंडों में भित्तिचित्र, पांडुलिपि चित्रण, लघु चित्रकला और दरबारी चित्रकला की अनेक शैलियाँ विकसित हुईं।

राष्ट्रीय संग्रहालय में भारतीय लघु चित्रकला की समृद्ध परंपरा का परिचय मिलता है। यहाँ विभिन्न क्षेत्रों और राजवंशों से संबंधित चित्रकला के उदाहरण प्रदर्शित हैं।

प्रमुख चित्रकला शैलियाँ निम्नलिखित हैं—

5.1 मुगल चित्रकला

मुगल चित्रकला का विकास अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में विशेष रूप से हुआ। इसमें फारसी परंपरा और भारतीय चित्रकला का समन्वय दिखाई देता है।

मुगल चित्रों के प्रमुख विषय थे—

- दरबारी जीवन।
- युद्ध एवं शिकार के दृश्य।
- सम्राटों और अमीरों के व्यक्तिचित्र।
- प्राकृतिक दृश्य।
- पशु-पक्षियों का चित्रण।
- ऐतिहासिक घटनाएँ।

जहाँगीर के शासनकाल में प्राकृतिक चित्रण और व्यक्तिचित्रण को विशेष प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों ने पक्षियों, पशुओं और फूलों का सूक्ष्म एवं यथार्थवादी चित्रण किया।

5.2 राजस्थानी चित्रकला

राजस्थानी चित्रकला में धार्मिक, पौराणिक, प्रेम एवं वीरता संबंधी विषयों का चित्रण मिलता है। इस शैली में कृष्णलीला, रामकथा, रागमाला और राजदरबारी जीवन विशेष महत्त्व रखते हैं।

मेवाड़, मारवाड़, बूंदी, कोटा, किशनगढ़ और बीकानेर चित्रकला की प्रमुख क्षेत्रीय शैलियाँ हैं।

5.3 पहाड़ी चित्रकला

हिमालयी क्षेत्र में विकसित पहाड़ी चित्रकला भारतीय लघु चित्रकला की अत्यंत सुंदर परंपरा है। कांगड़ा, गढ़वाल, बसोहली और गुलेर इसकी प्रमुख शैलियाँ हैं।

कांगड़ा शैली में कृष्ण-राधा की प्रेमलीला, प्राकृतिक सौंदर्य, पर्वतीय परिवेश और कोमल रंगों का विशेष प्रयोग मिलता है। गढ़वाल शैली में भी स्थानीय प्रकृति, धार्मिक विषयों और भावनात्मक अभिव्यक्ति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

उत्तराखंड के संदर्भ में पहाड़ी चित्रकला का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि यह हिमालयी समाज की धार्मिक चेतना, सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक परंपराओं को समझने का अवसर प्रदान करता है।

6. सिक्का दीर्घा : आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास के स्रोत

राष्ट्रीय संग्रहालय में सिक्कों का संग्रह भारतीय आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

सिक्के केवल विनिमय का साधन नहीं होते, बल्कि वे तत्कालीन शासकों, राजवंशों, धार्मिक मान्यताओं, व्यापारिक गतिविधियों और आर्थिक व्यवस्था की जानकारी भी देते हैं।

सिक्कों के अध्ययन को मुद्राशास्त्र (Numismatics) कहा जाता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में विभिन्न कालखंडों के सिक्के प्रदर्शित हैं, जिनमें प्राचीन पंच-चिह्नित सिक्के, मौर्यकालीन एवं उत्तर-मौर्यकालीन सिक्के, कुषाण, गुप्त, दिल्ली सल्तनत और मुगलकालीन सिक्के प्रमुख हैं।

सिक्कों के अध्ययन से निम्नलिखित जानकारियाँ प्राप्त होती हैं—

1. शासकों के नाम और उपाधियाँ।
2. राजवंशों का राजनीतिक विस्तार।
3. धार्मिक प्रतीक एवं मान्यताएँ।
4. व्यापार और वाणिज्य की स्थिति।

5. धातु एवं मुद्रा निर्माण की तकनीक।
6. तत्कालीन आर्थिक समृद्धि और विनिमय प्रणाली।

विशेष रूप से गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राएँ तत्कालीन आर्थिक एवं कलात्मक समृद्धि का परिचय देती हैं। इन सिक्कों पर शासकों को विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित किया गया है।

मुगलकालीन सिक्कों पर फारसी भाषा में शासकों के नाम, उपाधियाँ और धार्मिक अभिव्यक्तियाँ अंकित मिलती हैं।

इस प्रकार सिक्का दीर्घा का भ्रमण विद्यार्थियों को आर्थिक इतिहास के अध्ययन में भौतिक साक्ष्यों के महत्त्व से परिचित कराता है।

7. पांडुलिपि एवं अभिलेख दीर्घा

भारतीय इतिहास और ज्ञान परंपरा के अध्ययन में पांडुलिपियों का विशेष महत्व है। प्राचीन भारत में ज्ञान का संरक्षण एवं प्रसार मौखिक परंपरा के साथ-साथ पांडुलिपियों के माध्यम से भी होता था।

राष्ट्रीय संग्रहालय में विभिन्न भाषाओं और लिपियों में लिखी गई पांडुलिपियों का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इनमें संस्कृत, प्राकृत, फारसी और अन्य भाषाओं की सामग्री शामिल है।

पांडुलिपियों में धार्मिक ग्रंथ, दार्शनिक रचनाएँ, साहित्य, चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, संगीत और अन्य ज्ञान-विषयक सामग्री मिलती है।

पांडुलिपियों के निर्माण में भोजपत्र, ताड़पत्र, कागज और अन्य प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया जाता था।

पांडुलिपियों के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों की जानकारी मिलती है—

- प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था।
- धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराएँ।
- भाषा एवं लिपियों का विकास।
- साहित्यिक परंपराएँ।
- चिकित्सा एवं वैज्ञानिक ज्ञान।
- पांडुलिपि निर्माण और संरक्षण तकनीक।

अभिलेख भी इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें शासकीय आदेश, दानपत्र, विजय विवरण, धार्मिक घोषणाएँ और प्रशासनिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

पांडुलिपियों एवं अभिलेखों का अध्ययन विद्यार्थियों में स्रोत-आधारित इतिहास लेखन की समझ विकसित करता है।

8. अस्त्र-शस्त्र एवं सैन्य इतिहास दीर्घा

भारत का सैन्य इतिहास विभिन्न कालखंडों में विकसित युद्ध तकनीकों, हथियारों और सैन्य संगठन का परिचय देता है। राष्ट्रीय संग्रहालय में अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह इस इतिहास को समझने का अवसर प्रदान करता है।

इस संग्रह में तलवारें, खंजर, ढाल, भाले, धनुष-बाण, कवच तथा अन्य युद्ध उपकरणों के उदाहरण देखने को मिलते हैं।

भारतीय इतिहास में युद्ध केवल राजनीतिक सत्ता के विस्तार का माध्यम नहीं था, बल्कि इससे तकनीकी विकास, धातुकर्म, शिल्प और प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर भी प्रभाव पड़ा।

अस्त्र-शस्त्रों के अध्ययन से निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है—

1. विभिन्न कालों की युद्ध तकनीक।
2. धातु निर्माण और शिल्पकला।
3. सैनिकों की वेशभूषा और सुरक्षा उपकरण।
4. राजकीय सैन्य संगठन।
5. युद्ध की बदलती रणनीतियाँ।
6. क्षेत्रीय सैन्य परंपराएँ।

मध्यकालीन तलवारों और खंजरों पर की गई नक्काशी यह भी दर्शाती है कि युद्ध उपकरणों के निर्माण में उपयोगिता के साथ सौंदर्यबोध को भी महत्त्व दिया जाता था।

9. आभूषण, वस्त्र एवं धातुकला

भारतीय समाज में आभूषण और वस्त्र केवल व्यक्तिगत सजावट के साधन नहीं रहे हैं, बल्कि वे सामाजिक स्थिति, धार्मिक विश्वास, क्षेत्रीय पहचान और आर्थिक समृद्धि के प्रतीक भी रहे हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय में विभिन्न क्षेत्रों और कालखंडों के आभूषणों तथा वस्त्रों का संग्रह भारतीय शिल्प परंपरा की विविधता को प्रस्तुत करता है।

9.1 आभूषण कला

भारत में स्वर्ण, रजत, तांबा, रत्न और अन्य सामग्रियों से आभूषण बनाए जाते रहे हैं। इनमें हार, कंगन, अंगूठियाँ, बाजूबंद, पायल, मुकुट और कानों के आभूषण प्रमुख हैं।

डॉ. रोकेश मोहन नौटियाल

आभूषणों के अध्ययन से सामाजिक वर्गीकरण, स्त्री-पुरुषों की वेशभूषा, विवाह परंपराओं और आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

9.2 वस्त्र परंपरा

भारत की वस्त्र परंपरा अत्यंत प्राचीन है। सूती, रेशमी, ऊनी और अन्य प्राकृतिक रेशों से वस्त्र तैयार किए जाते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में बुनाई, रंगाई, छपाई और कढ़ाई की विशिष्ट तकनीकें विकसित हुईं। इन परंपराओं ने भारतीय व्यापार और हस्तशिल्प को भी समृद्ध किया।

9.3 धातुकला

भारतीय धातुकला की परंपरा प्राचीन काल से विकसित रही है। तांबा, कांसा, लोहा, सोना और चाँदी जैसी धातुओं का उपयोग औजारों, प्रतिमाओं, आभूषणों और दैनिक उपयोग की वस्तुओं के निर्माण में किया जाता था।

धातु की मूर्तियों और अन्य कलाकृतियों के अध्ययन से तत्कालीन तकनीकी ज्ञान और शिल्प कौशल की जानकारी मिलती है।

10. राष्ट्रीय संग्रहालय में बौद्ध एवं जैन विरासत का महत्त्व

भारत बौद्ध और जैन धर्म की जन्मभूमि है। इन दोनों धार्मिक परंपराओं ने भारतीय समाज, दर्शन, साहित्य, कला और स्थापत्य को गहराई से प्रभावित किया है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में बौद्ध और जैन धर्म से संबंधित कलाकृतियों के माध्यम से इन धार्मिक परंपराओं के विकास का अध्ययन किया जा सकता है।

10.1 बौद्ध विरासत

बौद्ध धर्म की कला में बुद्ध के जीवन, जातक कथाओं, बोधिसत्त्वों और बौद्ध प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रारंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को प्रत्यक्ष मानव आकृति के स्थान पर प्रतीकों—जैसे धर्मचक्र, पदचिह्न, बोधिवृक्ष और स्तूप—के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। बाद के काल में बुद्ध की मानव आकृति वाली प्रतिमाओं का विकास हुआ।

10.2 जैन विरासत

जैन कला में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ, आयागपट्ट, मंदिर स्थापत्य और पांडुलिपि चित्रण विशेष महत्त्व रखते हैं।

जैन प्रतिमाओं में ध्यान मुद्रा, कायोत्सर्ग मुद्रा और लांछनों के माध्यम से तीर्थंकरों की पहचान की जाती है।

इन कलाकृतियों के अध्ययन से अहिंसा, अपरिग्रह, तपस्या और आत्मसंयम जैसे जैन दर्शन के मूल सिद्धांतों को समझने में सहायता मिलती है।

इस प्रकार राष्ट्रीय संग्रहालय भारतीय धार्मिक बहुलता और सह-अस्तित्व की परंपरा को भी प्रस्तुत करता है।

11. संग्रहालय में संरक्षण एवं प्रदर्शन की वैज्ञानिक पद्धतियाँ

संग्रहालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य ऐतिहासिक वस्तुओं को सुरक्षित रखना है। प्राचीन वस्तुएँ समय, तापमान, नमी, धूल, प्रकाश, कीटों और अन्य पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित हो सकती हैं। इसलिए उनका संरक्षण वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर किया जाता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में संरक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं।

11.1 भौतिक संरक्षण

इसमें वस्तुओं की सफाई, टूट-फूट की मरम्मत, धातुओं से जंग हटाना तथा कमजोर संरचनाओं को स्थिर बनाना शामिल है।

11.2 रासायनिक संरक्षण

प्राचीन वस्तुओं को रासायनिक क्षरण से बचाने के लिए उपयुक्त रासायनिक पदार्थों और तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

11.3 पर्यावरणीय नियंत्रण

संग्रहालय में तापमान, आर्द्रता और प्रकाश की स्थिति नियंत्रित रखना आवश्यक है। विशेष रूप से पांडुलिपियों, वस्त्रों, चित्रों और लकड़ी की वस्तुओं के संरक्षण में इसका महत्त्व अधिक है।

11.4 अभिलेखीकरण एवं डिजिटल दस्तावेज़ीकरण

प्रत्येक पुरावशेष का विवरण तैयार किया जाता है। इसमें वस्तु का नाम, प्राप्ति स्थल, काल, निर्माण सामग्री, आकार, उपयोग और ऐतिहासिक महत्त्व दर्ज किया जाता है।

आधुनिक तकनीक के माध्यम से वस्तुओं की डिजिटल तस्वीरें, त्रिआयामी प्रतिकृतियाँ और ऑनलाइन संग्रह भी विकसित किए जा रहे हैं।

11.5 संग्रहालय शिक्षा

प्रदर्शित वस्तुओं के साथ सूचना-पट्ट, विवरण, मानचित्र और व्याख्यात्मक सामग्री लगाई जाती है, जिससे दर्शक वस्तुओं के ऐतिहासिक महत्त्व को समझ सकें।

इस प्रकार संग्रहालय केवल वस्तुओं का भंडार नहीं, बल्कि ज्ञान के प्रसार और विरासत संरक्षण का वैज्ञानिक संस्थान भी है।

डॉ. मनोहर मोहन नौटियाल

12. राष्ट्रीय संग्रहालय भ्रमण से प्राप्त शैक्षिक अनुभव

राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण विद्यार्थियों के लिए कक्षा-कक्ष के अध्ययन से आगे बढ़कर प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

इस भ्रमण से अनेक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्राप्त होते हैं—

प्रथम, विद्यार्थियों को यह समझने का अवसर मिलता है कि इतिहास का निर्माण केवल लिखित स्रोतों के आधार पर नहीं होता, बल्कि पुरातात्त्विक, कलात्मक और भौतिक साक्ष्य भी इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण आधार हैं।

द्वितीय, प्राचीन वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखने से ऐतिहासिक कालक्रम की समझ विकसित होती है। सिंधु सभ्यता से लेकर आधुनिक काल तक की वस्तुओं का अध्ययन भारतीय इतिहास की निरंतरता और परिवर्तनशीलता को समझने में सहायता करता है।

तृतीय, विद्यार्थियों को कला और संस्कृति के क्षेत्रीय स्वरूपों का परिचय मिलता है। भारतीय संस्कृति की विविधता और एकता को समझने का अवसर प्राप्त होता है।

चतुर्थ, संग्रहालय में प्रदर्शित वस्तुओं के माध्यम से विद्यार्थियों को यह ज्ञात होता है कि इतिहासकार किस प्रकार उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करके अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं।

पंचम, विरासत संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है। विद्यार्थी समझते हैं कि ऐतिहासिक धरोहरें केवल सरकार या संग्रहालय की संपत्ति नहीं हैं, बल्कि वे संपूर्ण समाज की साझा सांस्कृतिक धरोहर हैं।

षष्ठ, संग्रहालय भ्रमण विद्यार्थियों में अवलोकन, प्रश्न पूछने, तुलना करने और निष्कर्ष निकालने की क्षमता विकसित करता है।

13. उत्तराखंड की विरासत के संदर्भ में राष्ट्रीय संग्रहालय का महत्त्व

उत्तराखंड हिमालयी सभ्यता, धार्मिक परंपराओं, लोकसंस्कृति और ऐतिहासिक धरोहरों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध राज्य है। यहाँ के मंदिर, शिलालेख, मूर्तियाँ, लोककथाएँ, पारंपरिक वास्तुकला, हस्तशिल्प और जनजातीय परंपराएँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण उत्तराखंड की विरासत को व्यापक भारतीय ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का अवसर प्रदान करता है।

13.1 हिमालयी कला एवं संस्कृति

हिमालयी क्षेत्रों में विकसित मूर्तिकला, चित्रकला, धार्मिक स्थापत्य और लोकशिल्प भारतीय कला परंपरा की विशिष्ट शाखाएँ हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय में भारतीय क्षेत्रीय कला शैलियों का अध्ययन करते समय उत्तराखंड की सांस्कृतिक परंपराओं से तुलना की जा सकती है।

13.2 पहाड़ी चित्रकला और गढ़वाल शैली

गढ़वाल चित्रकला उत्तराखंड की महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धि है। इसमें धार्मिक आख्यानों, कृष्णलीला, रामकथा और प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण मिलता है।

पहाड़ी चित्रकला की अन्य शैलियों के साथ गढ़वाल शैली का तुलनात्मक अध्ययन क्षेत्रीय कला के विकास को समझने में उपयोगी है।

13.3 मंदिर स्थापत्य एवं धार्मिक परंपराएँ

उत्तराखंड के केदारनाथ, बद्रीनाथ, जागेश्वर, बैजनाथ और कटारमल जैसे धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल भारतीय स्थापत्य एवं धार्मिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय में संरक्षित मूर्तियों और धार्मिक कलाकृतियों का अध्ययन इन मंदिरों की कला परंपराओं के तुलनात्मक अध्ययन में सहायता कर सकता है।

13.4 जनजातीय एवं लोक विरासत

उत्तराखंड में भोटिया, जौनसारी, थारू, बुक्सा और अन्य समुदायों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराएँ हैं। उनके वस्त्र, आभूषण, लोकगीत, लोकनृत्य, पारंपरिक ज्ञान और आजीविका के स्वरूप हिमालयी समाज की विविधता को प्रदर्शित करते हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय के माध्यम से भारत की विभिन्न जनजातीय और लोक परंपराओं का व्यापक परिचय प्राप्त करके उत्तराखंड की स्थानीय विरासत का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

इस प्रकार राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण उत्तराखंड के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए स्थानीय इतिहास को राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से जोड़ने का अवसर प्रदान करता है।

14. संग्रहालय भ्रमण : इतिहास शिक्षण की प्रभावी पद्धति

इतिहास शिक्षण में संग्रहालय भ्रमण को अनुभवात्मक एवं गतिविधि-आधारित शिक्षण पद्धति के रूप में देखा जाता है। यह विद्यार्थियों को केवल तथ्यों को याद करने के स्थान पर ऐतिहासिक साक्ष्यों का अवलोकन और विश्लेषण करना सिखाता है।

संग्रहालय भ्रमण को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित गतिविधियाँ अपनाई जा सकती हैं—

1. भ्रमण से पहले विद्यार्थियों को संग्रहालय का परिचय एवं उसकी प्रमुख दीर्घाओं की जानकारी दी जाए।
2. विद्यार्थियों को अलग-अलग दीर्घाओं के अध्ययन हेतु समूहों में बाँटा जाए।
3. प्रत्येक समूह को किसी विशेष कालखंड या पुरावशेष पर आधारित अध्ययन कार्य दिया जाए।
4. विद्यार्थी वस्तुओं के नाम, काल, सामग्री, प्राप्ति स्थल और उपयोग का विवरण तैयार करें।

5. भ्रमण के दौरान प्रश्नोत्तर और चर्चा आयोजित की जाए।
6. भ्रमण के बाद विद्यार्थी अपनी अवलोकन रिपोर्ट प्रस्तुत करें।
7. चयनित पुरावशेषों पर लघु शोध परियोजना तैयार कराई जाए।

इस प्रकार संग्रहालय भ्रमण को पाठ्यक्रम से जोड़कर अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

15. संग्रहालय भ्रमण की सीमाएँ एवं सुधार की संभावनाएँ

राष्ट्रीय संग्रहालय जैसे संस्थान ज्ञान और विरासत संरक्षण के महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं, फिर भी संग्रहालयों के शैक्षिक उपयोग को और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

कुछ प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं—

- सभी विद्यार्थियों के लिए संग्रहालय तक पहुँचना आर्थिक और भौगोलिक दृष्टि से आसान नहीं होता।
- अनेक पुरावशेषों की जानकारी तकनीकी भाषा में होने के कारण सामान्य दर्शकों को उन्हें समझने में कठिनाई होती है।
- क्षेत्रीय भाषाओं में व्याख्यात्मक सामग्री की उपलब्धता सीमित हो सकती है।
- विद्यार्थियों के लिए नियमित शैक्षिक भ्रमण और विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता है।
- डिजिटल तकनीक और आभासी संग्रहालयों का उपयोग और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

इन चुनौतियों को दूर करने के लिए संग्रहालयों में हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में जानकारी उपलब्ध कराना, डिजिटल गाइड विकसित करना, विद्यार्थियों के लिए विशेष शैक्षिक कार्यक्रम आयोजित करना और विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के साथ संस्थागत सहयोग बढ़ाना उपयोगी होगा।

16. उपसंहार

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली का भ्रमण भारतीय इतिहास, कला, संस्कृति और सभ्यता के बहुआयामी स्वरूप को समझने का एक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव है। यह संग्रहालय भारत की हजारों वर्षों की सांस्कृतिक यात्रा को पुरातात्त्विक अवशेषों, मूर्तियों, सिक्कों, चित्रों, पांडुलिपियों, वस्त्रों, आभूषणों और अन्य ऐतिहासिक वस्तुओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

सिंधु घाटी सभ्यता की नगरीय संस्कृति से लेकर मौर्यकालीन कला, बौद्ध एवं जैन विरासत, गुप्तकालीन मूर्तिकला, मध्यकालीन चित्रकला और आधुनिक भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों तक राष्ट्रीय संग्रहालय भारतीय इतिहास की निरंतरता और विविधता को स्पष्ट करता है।

इस भ्रमण का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह विद्यार्थियों को इतिहास के सैद्धांतिक ज्ञान से आगे बढ़ाकर ऐतिहासिक साक्ष्यों के प्रत्यक्ष अध्ययन का अवसर प्रदान करता है। इससे उनमें अवलोकन, विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन और शोध की क्षमता विकसित होती है। साथ ही वे यह समझ पाते हैं कि सांस्कृतिक

विरासत का संरक्षण केवल अतीत को सुरक्षित रखने का कार्य नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के प्रति हमारी सामूहिक जिम्मेदारी भी है।

विशेष रूप से इतिहास के विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण पाठ्यक्रम और व्यावहारिक अध्ययन के बीच एक सशक्त सेतु का कार्य करता है। उत्तराखंड जैसे सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से समृद्ध राज्य के विद्यार्थियों के लिए यह भ्रमण स्थानीय विरासत को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने का अवसर प्रदान करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि **राष्ट्रीय संग्रहालय भारतीय सभ्यता की स्मृतियों का जीवंत भंडार है, जहाँ इतिहास केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से देखा, समझा और अनुभव किया जाता है।** संग्रहालयों के माध्यम से ही हम अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पहचान सकते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए इस अमूल्य विरासत को सुरक्षित रखने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

गढ़वाल विश्वविद्यालय के संग्रहालय

हिमालय की पुरातात्विक, सांस्कृतिक एवं नृवंशविज्ञान संबंधी विरासत का संरक्षण

1. प्रस्तावना

संग्रहालय किसी समाज की ऐतिहासिक स्मृतियों, सांस्कृतिक परंपराओं और सभ्यतागत विकास को सुरक्षित रखने वाले महत्त्वपूर्ण संस्थान होते हैं। ये अतीत के भौतिक साक्ष्यों को संरक्षित करके वर्तमान पीढ़ी को अपने इतिहास से परिचित कराते हैं। संग्रहालय में रखी गई मूर्तियाँ, सिक्के, अभिलेख, मृद्भांड, पांडुलिपियाँ, चित्र, पारंपरिक वस्त्र, आभूषण और दैनिक उपयोग की वस्तुएँ किसी क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की जानकारी प्रदान करती हैं।

उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। यहाँ प्राचीन बस्तियों, मंदिरों, पुरातात्विक स्थलों, लोककलाओं, जनजातीय परंपराओं तथा पारंपरिक ज्ञान की विविधता देखने को मिलती है। इस विरासत के वैज्ञानिक अध्ययन, संरक्षण और दस्तावेज़ीकरण में **हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर के हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय (Museum of Himalayan Archaeology and Ethnography)** की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

विश्वविद्यालय का इतिहास एवं पुरातत्व विभाग लंबे समय से उत्तराखंड तथा आसपास के हिमालयी क्षेत्रों के पुरातात्विक स्थलों के अन्वेषण, उत्खनन और ऐतिहासिक अध्ययन में सक्रिय रहा है। विश्वविद्यालय के आधिकारिक विवरण के अनुसार, विभाग द्वारा किए गए पुरातात्विक कार्यों से उत्तराखंड के प्राचीन इतिहास तथा यहाँ की सांस्कृतिक परंपराओं को समझने के नए अवसर प्राप्त हुए हैं।

2. गढ़वाल विश्वविद्यालय का संक्षिप्त परिचय

हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय की स्थापना 23 नवंबर 1973 को गढ़वाल क्षेत्र में उच्च शिक्षा के विस्तार के उद्देश्य से हुई थी। वर्ष 2009 में इसे केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालय का विकास गढ़वाल क्षेत्र के लोगों की उच्च शिक्षा संबंधी आकांक्षाओं और लंबे जनांदोलन से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय का मुख्य परिसर श्रीनगर, पौड़ी गढ़वाल में स्थित है। इतिहास, पुरातत्व, मानवशास्त्र और कला जैसे विषयों में इसकी शैक्षिक एवं शोध संबंधी गतिविधियाँ हिमालयी क्षेत्र के अध्ययन के लिए विशेष महत्त्व रखती हैं।

विश्वविद्यालय के इतिहास एवं पुरातत्व विभाग ने उत्तराखंड के विभिन्न क्षेत्रों में पुरातात्विक अन्वेषण और उत्खनन किए हैं। इनमें रणिहाट, थापली, मोरध्वज, भारत मंदिर क्षेत्र, पुरोला, मलारी तथा अन्य स्थलों का उल्लेख किया जाता है। इन अनुसंधानों ने क्षेत्र के प्राचीन इतिहास, बस्ती विकास और सांस्कृतिक संपर्कों को समझने में योगदान दिया है।

इसी अकादमिक और शोधपरक पृष्ठभूमि में विश्वविद्यालय का हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय विशेष महत्त्व प्राप्त करता है।

3. संग्रहालय की स्थापना एवं विकास

गढ़वाल विश्वविद्यालय में हिमालयी क्षेत्र की ऐतिहासिक धरोहरों को एकत्रित करने, संरक्षित करने और प्रदर्शित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए। विश्वविद्यालय के आधिकारिक स्व-मूल्यांकन प्रतिवेदन के अनुसार, **हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय की स्थापना वर्ष 1980 में हुई थी।** संग्रहालय का उद्देश्य क्षेत्र में प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषों तथा सांस्कृतिक सामग्री को संरक्षित करना और उन्हें अध्ययन एवं शोध के लिए उपलब्ध कराना है।

संग्रहालय की स्थापना हिमालयी इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कदम थी। इससे पहले अनेक ऐतिहासिक वस्तुओं और सांस्कृतिक परंपराओं के अध्ययन के लिए विभिन्न स्थलों पर जाकर सामग्री एकत्रित करनी पड़ती थी। संग्रहालय ने इन सामग्रियों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने और विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों को उनके अध्ययन का अवसर देने में योगदान दिया।

इस संग्रहालय का महत्त्व केवल पुरावशेषों के प्रदर्शन तक सीमित नहीं है। यह विश्वविद्यालय में संचालित पुरातात्त्विक अन्वेषण, उत्खनन, सांस्कृतिक अध्ययन और क्षेत्रीय इतिहास लेखन से भी जुड़ा है।

4. संग्रहालय का प्रमुख उद्देश्य

हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय का व्यापक उद्देश्य हिमालयी क्षेत्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करना और उसे शैक्षिक एवं शोधपरक गतिविधियों से जोड़ना है।

इसके प्रमुख उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है—

1. उत्तराखंड एवं आसपास के क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक वस्तुओं का संरक्षण।
2. प्राचीन सभ्यताओं और बस्तियों के विकास का अध्ययन।
3. क्षेत्रीय कला एवं स्थापत्य परंपराओं का दस्तावेज़ीकरण।
4. सिक्कों, अभिलेखों, मूर्तियों और अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन।
5. हिमालयी समुदायों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं को समझना।
6. विद्यार्थियों और शोधार्थियों को व्यावहारिक अध्ययन के अवसर प्रदान करना।
7. स्थानीय इतिहास और लोकसंस्कृति के प्रति जागरूकता विकसित करना।
8. वैज्ञानिक संरक्षण तकनीकों तथा डिजिटल दस्तावेज़ीकरण को प्रोत्साहित करना।

इस प्रकार संग्रहालय विश्वविद्यालय की शिक्षण और शोध संबंधी गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

5. संग्रहालय में संरक्षित प्रमुख पुरावशेष

विश्वविद्यालय के आधिकारिक स्व-मूल्यांकन प्रतिवेदन में हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय में टेराकोटा कलाकृतियों, मूर्तियों, पांडुलिपियों, सिक्कों, चित्रों, अभिलेखों तथा नृवंशविज्ञान संबंधी सामग्रियों के संग्रह का उल्लेख मिलता है।

इन वस्तुओं का ऐतिहासिक महत्त्व निम्नलिखित है।

5.1 टेराकोटा एवं मृद्भांड

टेराकोटा अर्थात् पकाई गई मिट्टी से निर्मित वस्तुएँ प्राचीन समाजों के जीवन को समझने का महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें मूर्तियाँ, खिलौने, पात्र और अन्य उपयोगी वस्तुएँ शामिल हो सकती हैं।

मृद्भांडों की बनावट, आकार, निर्माण तकनीक और सजावट के आधार पर प्राचीन समुदायों की तकनीकी क्षमता, दैनिक जीवन तथा सांस्कृतिक संपर्कों का अध्ययन किया जाता है।

हिमालयी क्षेत्रों में प्राप्त मृद्भांडों का अध्ययन बस्तियों के विकास, आर्थिक गतिविधियों और क्षेत्रीय सांस्कृतिक परंपराओं को समझने में सहायक होता है।

5.2 मूर्तिकला

मूर्तियाँ किसी क्षेत्र की धार्मिक मान्यताओं, कलात्मक अभिरुचियों और शिल्प तकनीकों की जानकारी प्रदान करती हैं। उत्तराखंड में शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध तथा जैन परंपराओं से संबंधित विविध प्रकार की कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

मूर्तियों के आकार, मुद्रा, अलंकरण, निर्माण सामग्री और प्रतीकों का अध्ययन करके उनकी शैली तथा ऐतिहासिक संदर्भों का विश्लेषण किया जा सकता है।

गढ़वाल क्षेत्र के मंदिरों और पुरातात्त्विक स्थलों में प्राप्त मूर्तिकला का तुलनात्मक अध्ययन उत्तराखंड की क्षेत्रीय कला परंपराओं को समझने के लिए उपयोगी है।

5.3 सिक्के

सिक्के इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनके माध्यम से शासकों, राजवंशों, आर्थिक गतिविधियों, व्यापारिक संबंधों तथा धार्मिक प्रतीकों के बारे में जानकारी मिलती है।

उत्तराखंड के ऐतिहासिक संदर्भ में सिक्कों का अध्ययन व्यापारिक मार्गों, स्थानीय सत्ता संरचनाओं और व्यापक भारतीय आर्थिक व्यवस्था के साथ क्षेत्र के संबंधों को समझने में सहायक हो सकता है।

5.4 अभिलेख

अभिलेखों में शासकीय आदेश, दान, धार्मिक गतिविधियों, राजकीय उपलब्धियों और प्रशासनिक व्यवस्थाओं से संबंधित जानकारी मिल सकती है।

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल

शिलालेखों और ताम्रपत्रों का अध्ययन इतिहासकारों को कालक्रम निर्धारित करने, शासकों की पहचान करने और राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों को समझने में सहायता प्रदान करता है।

5.5 पांडुलिपियाँ

पांडुलिपियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा की महत्त्वपूर्ण धरोहर हैं। इनके माध्यम से साहित्य, धर्म, दर्शन, चिकित्सा, लोकज्ञान और भाषायी विकास का अध्ययन किया जा सकता है।

गढ़वाल क्षेत्र में प्रचलित धार्मिक ग्रंथों, लोककथाओं, वंशावलियों तथा पारंपरिक ज्ञान से संबंधित पांडुलिपियों का संरक्षण क्षेत्रीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में विशेष उपयोगिता रखता है।

6. हिमालयी सांस्कृतिक विरासत का संग्रहालयीय संरक्षण

हिमालयी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत विविध है। यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों, धार्मिक परंपराओं, आजीविका के साधनों और ऐतिहासिक संपर्कों ने विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूपों को जन्म दिया है।

गढ़वाल विश्वविद्यालय का संग्रहालय इस विरासत को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण संस्थागत आधार प्रदान करता है।

हिमालयी विरासत को व्यापक रूप से निम्नलिखित वर्गों में समझा जा सकता है—

भौतिक विरासत: मूर्तियाँ, पुरातात्त्विक अवशेष, सिक्के, अभिलेख, पांडुलिपियाँ, पारंपरिक उपकरण तथा अन्य ऐतिहासिक वस्तुएँ।

अमूर्त विरासत: लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक अनुष्ठान, पारंपरिक ज्ञान, लोकनृत्य, भाषा, मौखिक इतिहास और सामुदायिक स्मृतियाँ।

नृवंशविज्ञान संबंधी विरासत: पारंपरिक वस्त्र, आभूषण, आवास, कृषि उपकरण, घरेलू वस्तुएँ और सामाजिक जीवन से जुड़ी सामग्री।

विश्वविद्यालय का मानवशास्त्र विभाग भी हिमालयी ग्रामीण एवं जनजातीय संस्कृति के अध्ययन से संबंधित गतिविधियाँ संचालित करता है। विभाग के आधिकारिक परिचय में *Museum of Himalayan Cultural Heritage* का उल्लेख है, जो हिमालय की जनजातीय और ग्रामीण संस्कृति के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर समझना आवश्यक है: **हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय और Museum of Himalayan Cultural Heritage को नाम एवं उद्देश्य के आधार पर अलग-अलग संग्रहालयीय संस्थाओं के रूप में समझना चाहिए।** विश्वविद्यालय में दोनों का उल्लेख मिलता है, इसलिए किसी विशिष्ट संग्रहालय की यात्रा या रिपोर्ट तैयार करते समय उसके सही नाम और स्थान की पुष्टि करना उचित होगा।

7. पुरातात्त्विक अनुसंधान और संग्रहालय का संबंध

संग्रहालयों का महत्त्व तब और बढ़ जाता है, जब उनका संबंध क्षेत्रीय पुरातात्त्विक अनुसंधान से स्थापित होता है। गढ़वाल विश्वविद्यालय का इतिहास एवं पुरातत्व विभाग उत्तराखंड तथा आसपास के क्षेत्रों में पुरातात्त्विक अन्वेषण और उत्खनन करता रहा है।

विश्वविद्यालय के आधिकारिक विवरण में रणिहाट, थापली, मोरध्वज, पुरोला, मलारी और अन्य स्थलों पर किए गए अनुसंधानों का उल्लेख है। इन स्थलों से संबंधित अध्ययन ने क्षेत्र की प्राचीन बस्तियों, सांस्कृतिक विकास और ऐतिहासिक संपर्कों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई है।

पुरातात्त्विक अनुसंधान और संग्रहालय के बीच संबंध को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

1. पुरातात्त्विक सर्वेक्षण से संभावित ऐतिहासिक स्थलों की पहचान होती है।
2. उत्खनन से भौतिक साक्ष्य प्राप्त होते हैं।
3. प्राप्त वस्तुओं का वर्गीकरण, विश्लेषण और काल निर्धारण किया जाता है।
4. वस्तुओं का वैज्ञानिक संरक्षण किया जाता है।
5. उपयुक्त वस्तुओं को संग्रहालय में प्रदर्शित किया जाता है।
6. संग्रहालय में उपलब्ध सामग्री के आधार पर शोध और शिक्षण को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रक्रिया से इतिहास लेखन अधिक साक्ष्य-आधारित बनता है।

8. वैज्ञानिक संरक्षण और डिजिटल दस्तावेज़ीकरण

प्राचीन वस्तुएँ समय, नमी, तापमान, प्रकाश, धूल तथा अन्य पर्यावरणीय कारकों के कारण क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। इसलिए संग्रहालयों में वैज्ञानिक संरक्षण की आवश्यकता होती है।

गढ़वाल विश्वविद्यालय के आधिकारिक स्व-मूल्यांकन प्रतिवेदन में हिमालयी पुरातात्त्विक वस्तुओं के संरक्षण के साथ 3D प्रिंटिंग संबंधी कार्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें वर्जीनिया कॉमनवेल्थ विश्वविद्यालय, अमेरिका के साथ सहयोग का भी संदर्भ मिलता है।

डिजिटल तकनीक के माध्यम से ऐतिहासिक वस्तुओं का त्रिआयामी मॉडल तैयार किया जा सकता है। इससे वस्तुओं का अध्ययन, शैक्षिक प्रदर्शन और कुछ परिस्थितियों में प्रतिकृति निर्माण संभव होता है।

डिजिटल दस्तावेज़ीकरण के प्रमुख लाभ हैं—

- पुरावशेषों का डिजिटल रिकॉर्ड सुरक्षित रखना।
- वस्तुओं के आकार और संरचना का अध्ययन करना।
- शोधकर्ताओं को दूरस्थ रूप से अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराना।
- दुर्लभ वस्तुओं के अध्ययन के लिए डिजिटल प्रतिकृतियाँ तैयार करना।

डॉ. मोहन चौहान

- विरासत के प्रति विद्यार्थियों और आम जनता की रुचि बढ़ाना।

अक्टूबर 2024 में विश्वविद्यालय के हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय में एक विश्वविद्यालय स्मृति-वस्तु दुकान का उद्घाटन होने की सूचना भी प्रकाशित हुई थी। इसमें संग्रहालय की पुरातात्त्विक कलाकृतियों के 3D मॉडल उपलब्ध कराने की योजना का उल्लेख था।

यह पहल संग्रहालयीय सामग्री को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने तथा पुरातात्त्विक विरासत के शैक्षिक महत्त्व को लोकप्रिय बनाने की दिशा में उपयोगी उदाहरण है।

9. विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए संग्रहालय का महत्त्व

संग्रहालय इतिहास, पुरातत्व, मानवशास्त्र, कला इतिहास और सांस्कृतिक अध्ययन के विद्यार्थियों के लिए व्यावहारिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केंद्र होता है।

गढ़वाल विश्वविद्यालय का संग्रहालय विशेष रूप से हिमालयी क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

इसके प्रमुख शैक्षिक लाभ निम्नलिखित हैं—

1. **प्रत्यक्ष अध्ययन:** विद्यार्थी पुस्तकों में वर्णित पुरावशेषों एवं सांस्कृतिक सामग्री को वास्तविक रूप में देख सकते हैं।
2. **स्रोत-आधारित इतिहास:** ऐतिहासिक निष्कर्षों के निर्माण में भौतिक साक्ष्यों की भूमिका समझ सकते हैं।
3. **शोध कौशल:** वस्तुओं का विवरण तैयार करना, वर्गीकरण करना और तुलनात्मक अध्ययन करना सीख सकते हैं।
4. **स्थानीय इतिहास का अध्ययन:** उत्तराखंड की प्राचीन बस्तियों, मंदिरों, लोकपरंपराओं और क्षेत्रीय कला के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
5. **संरक्षण की समझ:** ऐतिहासिक वस्तुओं की सुरक्षा और दस्तावेज़ीकरण की प्रक्रियाओं से परिचित हो सकते हैं।
6. **अंतरविषयी दृष्टिकोण:** इतिहास, भूगोल, मानवशास्त्र, रसायन विज्ञान और डिजिटल तकनीक के परस्पर संबंधों को समझ सकते हैं।

इस प्रकार संग्रहालय विद्यार्थियों को सैद्धांतिक ज्ञान से आगे बढ़ाकर शोधपरक और अनुभवात्मक शिक्षा प्रदान करता है।

10. उत्तराखंड की विरासत के संरक्षण में संग्रहालय की भूमिका

डॉ. रक्षित मोहन नौटियाल

उत्तराखंड में मंदिर स्थापत्य, मूर्तिकला, अभिलेख, लोकसाहित्य, पारंपरिक वास्तुकला, जनजातीय संस्कृति और पर्यावरणीय ज्ञान की समृद्ध परंपराएँ मौजूद हैं। इनका संरक्षण राज्य की सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है।

गढ़वाल विश्वविद्यालय का संग्रहालय इस दिशा में शोध, दस्तावेज़ीकरण और शैक्षिक गतिविधियों के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

भविष्य में इस क्षेत्र में निम्नलिखित प्रयास उपयोगी हो सकते हैं—

- उत्तराखंड के पुरातात्त्विक स्थलों का डिजिटल मानचित्र तैयार करना।
- स्थानीय मंदिरों, शिलालेखों और मूर्तियों का व्यवस्थित दस्तावेज़ीकरण करना।
- लोकगीतों, लोककथाओं और मौखिक इतिहास का ऑडियो-वीडियो संग्रह तैयार करना।
- जनजातीय एवं ग्रामीण समुदायों की पारंपरिक जीवन-पद्धति का अध्ययन करना।
- महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए संग्रहालय भ्रमण आयोजित करना।
- स्थानीय समुदायों को विरासत संरक्षण की प्रक्रिया में शामिल करना।
- पुरावशेषों की प्रतिकृतियों और डिजिटल प्रदर्शनियों के माध्यम से जनसामान्य तक जानकारी पहुँचाना।

ऐसे प्रयासों से संग्रहालय को एक जीवंत शैक्षिक एवं सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

11. संग्रहालय के समक्ष चुनौतियाँ

सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में संग्रहालयों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इस कार्य में अनेक चुनौतियाँ भी सामने आती हैं।

पहली चुनौती पुरावशेषों के वैज्ञानिक संरक्षण की है। तापमान, नमी और अन्य पर्यावरणीय कारकों से वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए विशेषज्ञों और उपयुक्त संसाधनों की आवश्यकता होती है।

दूसरी चुनौती अभिलेखीकरण और डिजिटल दस्तावेज़ीकरण की है। प्रत्येक वस्तु का प्रामाणिक विवरण, उसका ऐतिहासिक संदर्भ तथा प्राप्ति स्थल का रिकॉर्ड व्यवस्थित रूप से सुरक्षित रखना आवश्यक है।

तीसरी चुनौती संग्रहालयों को व्यापक जनसमुदाय से जोड़ने की है। विद्यार्थियों, स्थानीय समुदायों और पर्यटकों के लिए सरल भाषा में व्याख्यात्मक सामग्री तथा शैक्षिक कार्यक्रम विकसित करना उपयोगी होगा।

चौथी चुनौती हिमालयी क्षेत्र की अमूर्त विरासत के संरक्षण की है। लोकगीत, लोककथाएँ, पारंपरिक ज्ञान और मौखिक इतिहास जैसी विरासतें समुदाय के दैनिक जीवन से जुड़ी होती हैं। इनके संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों की सहभागिता और सहमति आवश्यक है।

12. निष्कर्ष

हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय का हिमालय पुरातत्व एवं नृवंशविज्ञान संग्रहालय उत्तराखंड की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, अध्ययन और प्रसार की दृष्टि से महत्वपूर्ण संस्थान है। वर्ष 1980 में स्थापित यह संग्रहालय हिमालयी क्षेत्र के पुरातात्त्विक अवशेषों, मूर्तियों, सिक्कों, पांडुलिपियों, अभिलेखों, चित्रों तथा नृवंशविज्ञान संबंधी सामग्रियों के माध्यम से क्षेत्र की ऐतिहासिक विविधता को समझने का अवसर प्रदान करता है।

विश्वविद्यालय के इतिहास एवं पुरातत्व विभाग द्वारा किए गए पुरातात्त्विक अन्वेषणों तथा उत्खननों ने उत्तराखंड के प्राचीन इतिहास के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया है। संग्रहालय इन अनुसंधानों और शिक्षण गतिविधियों के बीच संबंध स्थापित करता है। साथ ही, वैज्ञानिक संरक्षण और डिजिटल दस्तावेज़ीकरण की पहलें विरासत के अध्ययन के नए अवसर प्रदान करती हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि गढ़वाल विश्वविद्यालय का संग्रहालय केवल ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह हिमालय की सभ्यता, सांस्कृतिक स्मृतियों और क्षेत्रीय पहचान को सुरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों, शोधार्थियों और सामान्य नागरिकों को अपने अतीत को समझने तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखने की प्रेरणा मिलती है।

डॉ. राकेश मोहन जोशियाल